



जैन साहित्य एवं मंदिर उपकरण

हमारे यहाँ सभी प्रकार का दिगंबर जैन एवं भारत के सभी प्रमुख धार्मिक संस्थानों का सत साहित्य एवं मंदिर में उपयोग हेतु उपकरण और प्रभावना में बाटने योग्य सामग्री सीमित मूल्य पर उपलब्ध है

ॐ



(पांडुशिला, सिंघासन, छत्र, चवर प्रातिहार्य, जाप माला, मंगल कलश, पूजा बर्तन, चंदोवा, तोरण, झारी,

(शुद्ध चांदी के उपकरण आर्डर पर निर्मित किया जाता है)



नोट:- हमारे यहाँ घरों में उपयोग हेतु साधुओं के उपयोग हेतु, अनुष्ठानों में उपयोग हेतु शुद्ध घी भी आर्डर पर उपलब्ध कराया जाता है



SOURABH KUMAR JAIN

9993602663

77229 83010

SOURABHJN1989@GMAIL.COM





॥ ॐ श्रीवीतरागाय नमः ॥

भक्तामर स्तोत्रम् ।

शब्दार्थ, अन्वार्थ, भावार्थ और भाषा पाठ
कठिन शब्दों के अर्थ सहित ।

जिसको

हकीम ज्ञानचन्द्र जैनी ने छपवाया

JAIN RELIGIOUS TRACTS SERIES

No., 51.

सन् १९१२ ई० । वीर २४३८

मूल्य ३)  मिलने का पता:-

हकीम ज्ञानचन्द्र जैनी मालिक दिगम्बरजैनधर्म
पुस्तकालय लाहौर ।

परजोष एकानामीकल यन्त्रालय लाहौर में प्रिण्टर
लाला लालमन जैनी के अधिकार से छपो ।

हक स्वाधीन रक्खा है और कोई न छापे ।

भूमिका।

यह भक्तामर संस्कृत पाठ श्रीमानतुंगाचार्य रचित है और इस का शब्द अर्थ अन्वयार्थ भाषार्थ हमने लिखा है और भाषा पाठ पण्डित हेमराज कृत है कठिन शब्दों का अर्थ हमने लिखा है परन्तु काल दोष से अन्यमति लेखकों ने भक्तामर संस्कृत की श्रुति और ४५वीं काव्य और भाषा पाठ के ३९ और ४४ छन्द में ऐसे शब्द प्रचलित कर दिये थे। जो स्त्री और पुरुषों की विषयेद्रियों के नाम हैं जब कभी स्त्री और मरद या पिता और पुत्र या पुत्री मिल कर यह पाठ पढ़ा करते थे तो महा लज्जा का स्थान होता बल्कि जब कभी कोई विषया पण्डित कभी किसी स्त्री को यह पाठ पढ़ाता था तो बार बार इन शरमनाक शब्दों का उच्चारण करने से उस स्त्री के शील भंगका कारण होता था सो वैवयोग से तलाश के बाद शुद्ध पाठ मिल जाने से हमने संस्कृत का पाठ ठाक कर और संस्कृत के अर्थ के साथ भाषा का मिलान कर सर्व त्रुटियाँ दूर कर दोनों पाठ अति शुद्ध कर लिये हैं भाषा छन्द ३२ में रवि नहीं रव पदो छन्द १३ में ढाकपत्र नहीं पीत पत्र पदो।

इस स्तोत्र का नाम भक्तामर कहने का यह कारण है कि इस स्तोत्र के आदिमें भक्तामर पाठ होने से इसे भक्तामर कहते हैं अथवा जो भक्त शुद्ध मन करके इस स्तोत्रको नित प्रति पढ़े वह अमर कहिये देवता, अथवा अ कहिये नहीं, मर कहिये मरना यानि नहीं मरने वाले अर्थात् सिद्ध होजाते हैं ॥

भक्तामरस्तोत्रम् ।

वसन्त तिलकछन्दः ।

भक्तामरप्रणतमौलिमणिप्रभाणा,

मुद्योतकं दलितपापतमोवितानम् ।

सम्यक् प्रणम्य जिनपादयुग्युगादा,

वालंबनं भवजले पततां जनानाम् । १ ।

शब्दार्थ—भक्त = भजने वाले । अमर = देवता । प्रणत = प्रणाम करते ।
मौलि = मस्तक (मुकुट) । मणि = रत्न । प्रभा = कांति । उद्योतकं = प्रकाश करनेवाला,
इलित = दूर कर दिया है । पाप = पाप रूपी । तमः = अंधेरा । वितान = समुद्र ।
सम्यक् = भली प्रकार । प्रणम्य = प्रणाम करके । जिनपाद = जिनेन्द्र के चरण ।
युग = दों । युगादी = युग के आदि में । आलम्बनं = सहारा । भवजल = संसाररूपी
पानी अर्थात् संसार समुद्र । पततां = गिरते हुए । जन = जीव ॥

अन्वयार्थ—भक्ति करनेवाले जो देवता उनके नाम हुए जो माथे उनके मुकुटों
की मणि (रत्नों) की कांतिका भी प्रकाशक, दूर कर दिया है पाप रूप अंधेरे का
समुद्र जिसने और संसार रूपी जल (समुद्र में गिरते जीवों का सहारा ऐसा जो
"युगादि में हुए" जिन का पाद युगल उस को भली भांति प्रणाम करके ।

भावार्थ—यहाँ भावार्थ कहते हैं कि हे प्रभो आपके चरणों में इतनी उ्योति
है कि जिस समय इन्द्र नमस्कार करते हैं उनके मुकुटों में जड़े हुए जो रत्न जगमग
जगमग करते हैं । वह धमक उन रत्नों में केवल आपके चरणों की प्रभा पड़ने से ही
पैदा होती है आपके चरणपाप रूपी अंधेरे के नाशक, संसार रूपी समुद्र में गिरते
हुए प्राणियों को हाथ से पकड़ कर बचाने वाले हैं ।

आदि पुरुष आदीशजिन, आदिसुविधि करतार ।

धर्म धुरन्धर परमगुरु, नमो आदि अवतार ॥ १०४

॥ १५ मात्रा चौपाई छन्द ॥

नतसुर मुकुट रत्न छवि करें । अन्तर पाप तिमिर सब हरे ॥

जिनपद बन्दू मन वच काय । भवजल पतित उद्धरणसहाय । १॥

यः संस्तुतः सकलवाङ्मयतत्त्वबोधा,

दुद्भूतबुद्धिपटुभिः सुरलोकनाथैः ।

स्तोत्रैर्जगत्त्रितयचित्त हरैरुदारैः,

स्तोष्ये किलाहमपितं प्रथमं जिनेन्द्रम् ॥२॥

शब्दार्थ—यः = जो । संस्तुतः = स्तुति किया गया । सकल = सभी । वाङ्मय (शास्त्र) तत्त्व = यथार्थसार । बोध = ज्ञान । उद्भूत = उत्पन्न हुई । बुद्धि = ज्ञान । पटु = चतुर । सुरलोक = स्वर्ग । नाथ = स्वामी । स्तोत्र = स्तुति । जगत = संसार । त्रितय = तीन । अर्थात् स्वर्ग मर्त्य (मनुष्यलोक) पाताल । चित्त (दिह) । हरैः = हरने वाले । उदार = अच्छे । स्तोष्ये = स्तुति करता हूँ । किल = निश्चय से । अहं = मैं । अपि = भी । तं = उसको । प्रथम = पहिले । जिनेन्द्र = आदि नाथ ॥

अन्वयार्थ—समस्त शास्त्र के तत्त्वज्ञान से उत्पन्न हुई जो बुद्धि उस करके चतुर जो इन्द्र उन करके तीन लोकों के चित्त को हरने वाले उज्वल स्तोत्रों से जो स्तुति किया गया है उस आदि जिनेन्द्र की मैं भी स्तुति करता हूँ ॥

भावार्थ—इस द्वितीय छन्द में कवि (आचार्य) ने स्तोत्र रचने की प्रतिष्ठा करी है और यहाँ आचार्य कहते हैं कि इन्द्र जैसे बुद्धिमान् स्तोत्र कर्ता जिस प्रभु की स्तुति करते हैं उस भगवान् की मैं भी स्तुति करने लगा हूँ ॥

श्रुतिपारगइंद्रादिकदेव । जाकी स्तुति कीनी कर सेव ॥

शब्द मनोहर अर्थ विशाल । तिसप्रभु की वरणु गण माल ॥२॥

आदि पुरुष = प्रथम पुरुष । आदिश जिन = प्रथम जिनदेव । आदि सुविध करतार = कामभूमिके आदि में विधिके कर्ता । धर्मधुरंधर = धर्म की धुरा (भार) के धारणवाला ॥

१—नतसुर = नत (नम्र) भक्त जो सुर = देवता । छवि = शोभा । अन्तर = सीतर का । पाप तिमिर = पाप रूपी अन्धेरा । वच = वाणी । काय = देह । मधु = संसार । जल = (मलधि) समुद्र । पतित = गिरे हुए । उद्धरण = निकाललेना ।

२—श्रुतिपारग = शास्त्र के पार जाने वाले । मनोहर = सुन्दर । विशाल = बहुत विस्तार वाला । प्रभु = स्वामी । गुणमाल = गुणों की माला (गुण समूह) ॥

बुद्ध्या विनाऽपि विबुधार्चित पादपीठ,
स्तोतु समुद्यतमतिविगतत्रपोऽहम् ।
बालं विहाय जलसंस्थितमिदुबिंब,
मन्यःकद्रच्छतिजनः सहसाग्रहीतुम् ॥३॥

बुद्ध्या = बुद्धि से । विना = बगैर । अपि = भी । विबुध = देवता । अर्चित = पूजित । पादपीठ = छोटी घोंकी । स्तोतुं = स्तुति करने के लिये । समुद्यत = तैयार मति = बुद्धि । विगत = दूर होगई । त्रपा = लज्जा (शरम) । अहं = मैं । बालं = बच्चे को । विहाय = छोड़ कर । जल = पानी । संस्थित = ठहरा हुआ । इन्दु = चाँद । विम्ब = मण्डल । मन्य = दूसरा । कः = कौन । इच्छति = चाहता है । जनः = मनुष्य सहसा = जलदी प्रहृतुं = पकड़ने को ॥

अन्वयार्थ—देवताओं परके पूजा गया है पादपीठ जिसका ऐसे हे स्वामिन् । दूर होगई है लज्जा जिसकी ऐसा मैं बुद्धि से विना ही स्तुति करने को तैयार हुआ हूं, पानी में स्थित चान्द के प्रतिविम्ब को विना बालक के दूसरा कौन मनुष्य शीघ्र ग्रहण करना चाहता है ॥

भावार्थ—जैसे जल में पड़े हुए चान्द के प्रतिविम्ब को महा मूढ़ बालक पकड़ना चाहे वैसे मैं आप की स्तुति करने लगा हूं अर्थात् यहां आचार्य कहते हैं कि हे भगवन् जैसे पानी में पड़े चाँद के प्रतिविम्ब को पकड़ना असंभव है वैसे ही मेरी बुद्धि कर आपका स्तोत्र रचना असंभव है, तो भी मैं शरम छोड़ कर आपका स्तोत्र रचने को उद्यमी हुआ हूं ॥

विबुधबंध प्रभु मैं मतिहीन । होय निलज स्तुति मनसा कीन ।
जल प्रतिविम्ब बुद्धको गहे । शशिमण्डल बालक ही चहे ॥३॥

३—विबुध = देवता । निलज (निलज्ज) = वैशरम । जलप्रतिविम्ब = पानी में पड़ा हुआ चान्द का प्रतिविम्ब । शशिमण्डल = चान्द । बुद्ध = पण्डित । गहे = पकड़े । बालक = बच्चा (मूर्ख) । चहे = इच्छे है ॥

वक्तुं गुणान् गुणसमुद्रशशांक कांतान्,
 कस्ते क्षमः सुरगुरुप्रतिमोऽपि बुद्ध्या ।
 कल्पांतकालपवनोद्धतनक्रचक्रं,

कीर्वातरीतुमलमंबुनिधिं भुजाभ्याम् ॥४॥

वक्तुं = कहने को गुणान् = गुणों को । गुणसमुद्र = हे गुणों के सागर । शशांक = चांद । कांत = सुन्दर । कः = कौन । ते = तुम्हारे । क्षमः = समर्थ । सुरगुरु = बृहस्पति । प्रतिमा = समान । अपि = भी बुद्ध्या = बुद्धिसे । कल्पांतकाल = प्रलयकाल पवन = वायु । उद्धत = उछाले । नक्र = मगरमच्छ । चक्र = समूह । कः = कौन । वा = अथवा । तरीतुं = तैरने को । अलं = समर्थ । अम्बुनिधि = समुद्र । भुजाभ्यां = भुजाओं से (हाथों से) ।

अन्वयार्थ—हे गुणों के सागर ! चान्द के समान मनोहर तेरे गुणों के कहने को बुद्धि से बृहस्पति के तुवय भी कौन पण्डित समर्थ है । प्रलय काल की वायु से उछल रहे हैं नाकूषों के समूह जहां ऐसे समुद्र को भुजावों से कौन तैर सकता है ।

भावार्थ—यहां आचार्य कहते हैं कि हे गुणों के सागर आप के गुण असंख्य हैं जब बृहस्पति सारखे बुद्धिमान् भी आप के गुण वर्णन करने में अशक्त हैं तब मेरी अल्पबुद्धि कर आपके गुणों का वर्णन करना हाथों से अगाध समुद्र के तैरने के समान है ॥

गुणसमुद्र तुम गुणअविकार । कहत न सुरगुरु पावे पार ॥

प्रलय पवन उद्धत जलजन्त । जलधि तिरे को भुजबलवन्त ॥४॥

४—गुणसमुद्र = गुणों का सागर । अविकार = विकार से रहित (शुद्ध) । सुरगुरु = बृहस्पति । पवन = वायु । उद्धत = उछलते । जलजन्त = जल के जीव । जलधि = समुद्र । भुज = बांह से । बलवन्त = बलवाला ॥

सोऽहं तथापि तव भक्तिवशान्मुनीश,

कर्तुं स्तवं विगतशक्ति रपि प्रवृत्तः ।

प्रीत्यात्मवीर्यमविचार्यमृगी मृगेन्द्रं,

नाऽभ्येति किंनिजशिशोःपरिपालनार्थम् ॥५॥

सोहम् = सो मैं । तथापि = तौ भी । तव = तुम्हारी । भक्तिवशात् = भक्ति के वश से । मुनीश = मुनीश्वर । कर्तुं = करणे को स्तव = स्तोत्र । विगत = दूर हो गई । शक्ति = सामर्थ्य । अपि = प्रवृत्तः = तत्पर (मशगूल) प्रीत्या = प्रेम से । आत्म वीर्य = अपनी ताकत । अविचार्य = बिना विचारे । मृगी = हिरणी । मृगेन्द्र = शेर । नाऽभ्येति = सन्मुख नहीं आती । किं = क्या । निजशिशोः = अपने बच्चे के । परिपालनार्थम् = बचाने के लिये ॥

अन्वयार्थ—तौ भी हे मुनीश शक्ति हीन भी मैं तुम्हारी भक्ति के वश से स्तोत्र बनाने के लिये प्रवृत्त हुआ हूँ ।

हिरणी प्रेम से अपनी ताकत को न विचार कर अपने बच्चे के बचाने के लिये शेर के सन्मुख क्या नहीं जाती ।

मवार्थ—जैसे हिरणी अपने में शेर के मुकाबले की ताकत न होते हुए भी अपने बच्चे की प्रीति के वश से शेर के सन्मुख जाती है वैसे ही मैं यह जानता भी हूँ कि मेरे में आपके स्तोत्र बनाने की लिपाकन नहीं है तौ भी मैं हे अरहन्त भगवन् आप के प्रेम के वशीभूत हुआ आप का स्तोत्र बनाने में तत्पर (मशगूल) हुआ हूँ ॥

सो मैं शक्तिहीनस्तुतिकरूँ । भक्तिमात्र वश कुछ नहीं डरूँ ॥

ज्यूँ मृगी निज सुत पालन हेत । मृगपति सन्मुखजाय अचेत ॥५

५—शक्ति हीन = सामर्थ्य से रहित (कमजोर) । भाव = भावना । मृगी = हिरणी । निज = अपना । सुत = पुत्र । हेत = लिये । मृगपति = शेर । अचेत = बिना समझे ॥

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहासधाम,
 त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्ममाम् ।
 यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति,
 तच्चारुचाम्कलिकानिकरैकहेतुः ॥ ६ ॥

अल्प = थोड़ा । श्रुत = शास्त्र । श्रुतवतां = पण्डितों को परिहास = हांसी ।
 धाम = पात्र । त्वद्भक्ति = तुम्हारी भक्ति । एव = ही । मुखरीकुरुते = चाबाल करती
 है । बलात् = जोर से । मां = मुझे । यत् = जैसे (जो) कोकिलः = कोयल । किल =
 निश्चय से । मधौ = वसन्त में । मधुर = मीठा विरौति = शब्द करता है । तत् = वह ।
 चारु = मनोहर । आम्र = आम । कलिका = कली (मञ्जरी वा कोहर)निकर = समूह ।
 एकहेतु = एक खाल सबब ।

अन्वयार्थ—हे प्रभो थोड़ा पढ़े हुये और विद्वानों की हांसी के स्थान मुझ
 को आप की भक्ति जोरावरी से बहुत बोलने वाला करती है जो वसन्त ऋतु में
 कोयल मीठागाती है उसमें मनोहर आम की मञ्जरी का समूह ही सबब है ॥

भावार्थ—हे भगवन् जैसे वसन्त ऋतु में आम के कोर के प्रभाव से तृप्त
 हुई हुई कोयल मीठे मीठे शब्द करती है उसी तरह से मुझ फम इलम बालमों की
 हांसी के स्थान को आप की भक्ति जोर जोर से धारा प्रवाह अपनी स्तुति करने
 को मजबूर करती है ॥

नोट—इस श्रीमान्तंगाचार्य रचित काव्य में किसी ने आम्र शब्द दूर कर
 उसकी जगह एक ऐसा लज्जा उपजाने वाला शब्द गूँथ दिया था जो स्त्री के उस
 पोशीदा अंग का नाम है जिस से पुत्र पुत्री जन्मते हैं देखो जैनस्तोत्र संग्रह पृष्ठ ४
 छापा बम्बई सं० १९४७ वि० सो इस समय तक किसीने भी उस दोष के दूर करनेकी
 कोशिश नहीं की जब हमने प्रथम यह संस्कृत पाठ छापा तब यह चूटी दूरकरी थी ॥

मैं शठ बुद्धि हसन को धाम । तुम मुझ भक्ति बुलावे राम ॥

ज्यूपिक अम्ब्र कली परभाव । मधुऋतु मधुर करे आरात्र ॥ ६ ॥

त्वत्संस्तवेन भवसंततिसन्नि बद्धं,

पापंक्षणात्क्षयमुपैति शरीरभाजाम् ।

आक्रांतलोकमलिनीलमशोप्रभाशु,

सूर्यांशुभिन्नमिव शर्वरमंधकारम् ॥ ७ ॥

स्वरसंस्तवेन = तुम्हारे स्तोत्र से । भवसंतति = जन्म समूह । सन्निबद्धं = बन्धे हुये । पाप = गुनाह । क्षणात् = थोड़े वकत में । क्षय = नास को । उपैति = प्राप्त होते हैं । शरीरभाजां = देहधारियों के । अक्रांतलोक = दुनियां में छारहा अलिनील = भ्रमरके समान नीला । अशोप = कुल । आशु = जल्दी । सूर्य = रवि । अंशु = किरण । भिन्नं = दूर किया । इव = तरह । शर्वर = रात का । अन्धकार = अन्धेरा ॥

अन्वयार्थ—हे भगो ! जैसे जगत् को आक्रमण करने वाला भौरे को समान काली रात का तमाम अन्धेरा सूर्य की किरण से फटा हुआ तत्काल नष्ट होजाय है वैसे ही प्राणियों का जन्म जन्मान्तर से बंधा हुआ पाप कर्म आपके स्त्रोत से क्षण में नाश को प्राप्त होता है ॥

भावार्थ—हे भगवन् जैसे जगत् में छाया हुआ भी अन्धकार सूर्य के प्रकाश से नष्ट होजाता है । वैसे ही आप का स्तोत्र पढने से अनेक जन्म के बांधे हुए पाप क्षण मात्र में जाते रहते हैं ॥

तुम यज्ञ जंपत जन छिन माहिं । जन्म जन्म के पाप नसाहिं ॥

७ रवि उदय फटे तत्काल । अलिवत् नील निशा तम जाल ॥ ७ ॥

७—जंपत = जपना (उच्चारणा) । नसाहिं = नस जाते हैं । रवि = सूर्य । उदय = उगना ॥

अलिवत् = भौरे के समान । नील = नीला, काला । निशा = रात । तम-जाल = अन्धेरे का समूह ॥

मत्वेति नाथ तव संस्तवनंमयेद,
 मारभ्यते तनुधियाऽपि तव प्रभावात् ।
 चेतोहरिष्यति सतां नलनीदलेशु,
 मुक्ताफलद्युतिमुपैति ननूदविन्दुः ॥ ८ ॥

मत्वा = मानकर । इति = यह । नाथ = स्वामिन् । तव = तुम्हारा । संस्तवन
 = स्तोत्र । मया = मेरेसे । इदं = यह । मारभ्यते = शुरू किया गया है तनुधिया = कम
 बुद्धि से । अपि = भी । तव = तुम्हारे । प्रभाव = प्रताप । चेतो = दिलको । हरिष्यति
 = चुरालेगी । सतां = सज्जन । नलिनी = कमलनी । दल = पत्र । मुक्ताफल = मोती ।
 द्युति = कान्ति । उपैति = पाता है । ननु = निश्चय से । ननूदविन्दु - जलकी बून्द ।

अन्वयार्थ—हे स्वामिन् । यह जान कर तुम्हारे प्रभाव से थोड़ी बुद्धि करके
 भी तुम्हारा स्तोत्र मेरे से शुरू किया जाता है सो यह स्तोत्र सज्जनों के चित्त को
 हरेगा । जल की बून्द कमलनी के पत्र पर पड़ी हुई मोती की शोभा को धारती है ।

भावार्थ—हे भगवन् जैसे कमल के पत्र पर पड़ी हुई पानी की बून्द मोती
 समान भासती है यही मानकर मैंने आपका स्तोत्र चनाना शुरू किया है ॥

सो समझ करता हूँ कि मुझकम इलमसे किया हुआ यह आप का स्तोत्र
 (गुणानुवाद) सज्जनों के चित्त को हरेगा ॥

तुमप्रभाव ते करुं विचार । होसी यह धुति जन मन हार ॥

ज्यों जल कमल पत्र पे परे । मुक्ताफल की द्युति विस्तरे ॥ ८ ॥

८—प्रभाव = प्रताप । होसी = होवेगी । मनहार = मन को हरने वाली । पत्र
 = पत्ता । परे = गिरे । मुक्ताफल = मोती द्युति = कान्ति ॥

आस्तां तव स्तवनमस्तसमस्तदोषं,
 त्वत्संकथाऽपि जगतांदुरितानि हन्ति ।
 दूरे सहस्रकिरणः कुरुते प्रभैव,
 पद्माकरेषु जलजानि विकाशभाञ्जि ॥ ६ ॥

आस्ता = (दूर) रही । तव = तुम्हारा । स्तवन = स्तोत्र । अस्त = नाश (दूर) होना । समस्त = सकल । दोष = गुनाह । त्वत् = तुम्हारी । संकथा = भङ्गी कथा । अपि = भी । जगतां = संसार के । दुरित = पाप । हन्ति = नाश करती है । दूरे = दूरमें सहस्र किरण = सूरज । कुरुते = करता है । प्रभा = तेज । एव = ही । पद्माकर = सरोवर जलज = कमल । विकाशभाञ्जि = खिलने वाले ।

अन्वयार्थ—दूर कर दिये हैं सकल पाप जिसने एसा आपका स्तोत्र तो दूर रही आपकी तो कथा ही पापों को दूर करती है सूरज तो दूर रही सूरज की कति ही सरोवरों में कमलों को खिलाने वाले कर देती हैं ॥

भावार्थ—हे भगवन् जैसे सूर्य तो बहुत दूर है सिर्फ उसके उगने के पूरे उस कर किये हुवे उजाले से प्रातःकाल कमल खिल जाते हैं तैसे ही आप का स्तोत्र तो एक बहुत बड़ी बात है केवल तुम्हारे नाम मात्र के उच्चारण से ही जीवों के पाप दूर होजाते हैं ॥

तुम गुण महिमा हत दुःख दोष ।

सो तो दूर रहो सुख पौष ॥

पाप विनाशक है तुम नाम ।

कमल विकासे ज्युं रविधाम ॥९॥

१-महिमा = साहाय्य (बड़ाई) । हत = नाश करनेवाली विकाश = खिलाने । रविधाम = सूरज का तेज ॥

नात्यद्भुतं भुवन भूषण भूत नाथ,
भूतैर्गुणैर्भुवि भवंतमभिष्टवंतः ।

तुल्या भवंति भवतीननु तेनकिंवा,

भूत्याश्रितंयद्ब्रह्मनात्मसमं करोति ॥ १० ॥

न = नहीं । अत्यद्भुतं = बड़ा आश्चर्य । भुवन = संसार भूषण = अलंकार (जेवर) । भूत = प्राणि । नाथ = स्वामी । भूत = सुन्दर । गुण = गुण । भुवि = जमीन पर । भवन्त = आपको । अभिष्टुवन्तः = स्तुति करते हुए । तुल्या = बरोबर भवन्ति = होते हैं । भवतः = तुम्हारे । ननु निश्चय से । तेन = उस करके । किं = क्या । वा = अथवा । भूति = विभूति । श्रितं = दास । या = जो । इह = यहाँ । न नहीं । आत्मसम = अपने समान । करोति = करता है ।

। अन्वयार्थ—हे जगत् के भूषण भक्तों प्राणियों के स्वामिन् पृथ्वीमें सब्हे गुणों कर आपको स्तुति करते हुये भक्त यदि आप के तुल्य होजाते हैं तो इसमें क्या आश्चर्य है ।

इस जगत् में जो अपने आश्रित को विभूति करके अपने समान नहीं करता उस से क्या ।

भावार्थ—हे नाथ इस जगत् में वही स्वामी श्रेष्ठ हैं जो अपने आश्रित को विभूति कर अपने समान कर देते हैं सो यदि आपको भजते भजते जो भक्त जीव, इस ही दुनिया में आप के समान होजाते हैं तो इस में क्या आश्चर्य है ॥

नहीं अचंभ जो होय तुरन्त ।

तुम से तुम गुण वरणत सन्त ।

जो आधीन, को आप समान ।

करे न सो निन्दित धनवान् । १० ।

१०—अचंभ = अचंभना (आश्चर्य) । तुमसे = तुमजैसे आधीन = सेवक (भक्त) ॥

दृष्ट्वा भवंतमनिमेषविलोकनीयं,
नाऽन्यत्र तोषमपयाति जनस्य चक्षुः ।
पीत्वा पयः शशि करद्युतिदुग्धसिंधोः,
क्षारं जलं जलनिधेरसितुं क इच्छेत् ॥१॥

दृष्ट्वा = देख करके । भवन्तं = आपको । अनिमेष = बिना आँख के झमकने से । विलोकनीयं = देखने योग्य । न = नहीं । अन्यत्र = और जगह । तोष = भानन्द । अप-याति = पाती है । जनस्य = मनुष्यकी । चक्षुः = आँख पीत्वा = पी करके । पयः = दूध । शशि कर = चाँद की किरण युति = कति । दुग्धसिंधुः = क्षीरसमुद्र । क्षारः = खारे । जल = पानी । जलनिधि = समुद्र । असितुं = पीने । को = कौन । इच्छेत् = चाहे ।

अन्वयार्थ—हे प्रभो न-झमकने से । देखने योग्य आपको देख कर मनुष्य की आँख दूसरी जगह भानन्द को नहीं पाती । चन्द्रमाकी किरणों की शोभा के समान शोभावाले क्षीर समुद्र के दूध को पीकर दूसरे समुद्र के खारे पानी पीने को कौन चाहता है ।

भावार्थ—हे भगवन् काल के भेदों में आँख झमकने मात्र वकत (एकपलक) थोड़ासा समय है सो आप का यह देखने योग्य (दिलकशा) स्वरूप नहीं झमकती है आँख जिस की (लगातार देखनेवाला) एक पलक तो क्या अगर जरा मो इन्सान की आँख देख लेवे तो फिर वह आपको देखतो हुई पलकमात्र मो दर्शनाभाव नहीं सदती हुई लगातार आप को ही देखने की इच्छक किसी दूसरे को भी देखना पसंद नहीं करती क्योंकि क्षीर समुद्र को उज्जल दुग्ध को पीकर खारे समुद्र का जल कौन पीना चाहता है

गोष्ट—अरहंतकी आँख कभी नहीं झमकतो ओर देखने वालों की आँख भी उन को देख कर यहो चाहती है कि मैं उन के स्वरूप को देखे जाऊँ झमकुं नहीं ॥

इकटक जन तुम को अविलोय । और विषे रति वरे न सोय ॥
को कर क्षीरजलधि जल पान । क्षार नीर पीवे मति मान ॥

यैःशांतरागरुचिभिः परमाणुभिस्त्वं

निर्मापितस्त्रिभुवनैकललामभूत् ।

तावंत एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां

यत्तेसमानमपरं न हिरूपमस्ति ॥ १२ ॥

५ ५ यैः = जिन्हों करके। शांतराग = जाता रहा है राग जिनका। रुचि = इच्छा। परमाणु = पदगुलका सबसे छोटा हिस्सा (जर्ग)। त्वं आप निर्मापित = बनाया गया। त्रि = तीन। भुवन = जगत्। एक = अकेला। ललामभूत् = भूषणरूप। तावन्तः = उनमें। एव = ही। खलु = निश्चयसे। ते = वे। अपि = भी। अणवः (परमाणु)। पृथिवी = जमीन। यत् = जिससे। ते = तुम्हारे। समान = तुल्य। अपर = दूसरा। नहीं = नहीं। रूपं = रूप। अस्ति = है ॥

धन्वयार्थ—हे भगवन् तीन भुवनों के भूषण रूप तुम, शांत होगये हैं राग (मोह) अथवा (रंग) और रुचि = इच्छा जिनके ऐसे जिनपरमाणुओं से आप बनाए गए हो वह परमाणु उतने ही थे जिससे कि तुम्हारे समान दूसरा रूप पृथ्वी में नहीं है ॥

भावार्थ—हे भगवन् आप तीनलोक के भूषण ही जिन शांतराग इच्छा रहित परमाणुओं से आप का शरीर बना है वह जगत् में उतने ही थे यही कारण है कि आप जैसा रूप और किसी दूसरे का नहीं है।

तुम प्रभु वीतराग गुण लीन ।

जिन परमाणु देह तुम कीन ॥

हैं जितने ही ते परमान ।

यार्ते तुम-सम रूप न आन ॥१२॥

वक्त्रं क्व ते सुरनरीरगनेत्रहारि,
निशेषनिर्जितजगत्रितयोपमानम् ।
बिम्बं कलंकमलिनं क्व निशाकरस्य,
यद्वासरे भवति पांडुपलाशकल्पम् ॥ १३ ॥

वक्त्रं—मुख । क्व = कहां । ते—तुम्हारा । सुर = देवता । नर = मनुष्य । उरग = सांप । नेत्र = मांख । हारि मनोहर । निशेष = सकल । निर्जित = जीतलिया । जगत्रितय = तीन लोक । उपमान = उपमा । बिम्ब = प्रतिबिम्ब । कलंक मलिन = कलंक से मैला । क्व = कहां । निशाकर = चांद । यत् = जो । वासर = दिन । भवति = होता है । पांडु = पीला पलाश = पत्ता । कल्प = समान ॥

अन्वयार्थ—हे भगवन् देवता, मनुष्य, और सर्पों के नेत्रों को हरणे वाला, और जीत लीनी है तीन जगत् की उपमायें जिस ने ऐसा आपका मुख कहां और वह कलंक से मैला चांद का प्रतिबिम्ब कहां जोकि दिन में पीले पत्ते के समान होजाता है ।

भावार्थ—हे भगवन् आपके रूप की सुन्दरता ने जितने देव मनुष्य और सर्पादि तिर्यक्य हैं सर्व के नेत्र और मन हर लिये हैं हम कवि लोग सब से बढ कर चांद की उपमा अच्छी मानने हैं परंतु यदि हम उस की उपमा भी आपके मुख को देवे तो पूर्णमासि का पूरा चांद भी कलंकित भासता है और दिन में पीले पत्ते की तरह चमक रहित होजाता है आपका मुख निकलंक सदा वैदीप्यमान है सां चांद को भी जीतने वाला है पर तीन लोक में ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जिस की उपमा आपके मुख को देखक इसलिये आपका मुख अनुपम है ।

नोट—पलाशशब्द का अर्थ ढाकाभी है पर भी है सो पांडुपलाश का अर्थ पीतपत्र होना चाहिये सोई हमने ठोक कर दिया है ।

कहां तुममुख अनुपम अविकार ।

सुर नर नाग नयन मनहार ॥

कहां चन्द्र मण्डल सकलंक ।

दिन में पीत पत्र सम रंक ॥ १३ ॥

संपूर्णमंडलप्रशांककलाकलाप,
 शुभ्रागुणास्त्रिभुवनंतवलंघयन्ति ।
 ये संश्रितास्त्रिजगदीश्वरनाथमेकं,
 कस्तान्निवारयति संचरतो यथेष्टम् ॥१४॥

संपूर्ण = पूरा । मण्डल = प्रतिविम्ब । प्रशांक = चाँद । कला = सोलहमा
 हिस्सा । कलाप = समूह । शुभ्रा = सफ़ैद । गुण = गुण । त्रिभुवन = त्रिलोकी । तत्र =
 वहाँ पर । लंघयन्ति = उल्लंघन करते हैं । ये = जो । संश्रिताः = आश्रयसे हैं । त्रिजगदीश्वर =
 तीनलोकके नाथ । नाथ = स्वामी । एतु = एतु कः = कौन । तान् = उनको । निवारयति =
 निवारता है (हटाता है) । संचरतः = विचरते रहे । यथेष्टं = अपनी इच्छा से ।

अन्वयार्थ—हे भगवन्! सम्पूर्ण मण्डल वाले चान्द की किरणों के समूह के
 समान सफ़ैद आपके गुण त्रिलोकी को उल्लंघन करते हैं । जो गुण तीन जगत् के एक
 स्वामी को आश्रय करते हैं इच्छा से विचरते हुए उनको कौन निवारण कर सकता है ॥

भावार्थ—हे तीन लोक के नाथ तीन लोक में जितने गुण हैं सर्व ने अपनी
 इच्छा से विचरते हुए आपका आश्रय लिया है अर्थात् यह सर्व आपमें आनिष्टे हैं सो
 आप के गुण पूर्ण चन्द्रमा के मंडल की किरणों के समूह के समान उज्जल तीन लोक को
 भी उल्लंघन कर सर्व लोकाकाश में व्याप्त हो रहे हैं उनको कोई भी हटा नहीं सकता
 अर्थात् चन्द्रमा की उज्जलता और गुण तो सिर्फ इस ही लोक में फैलते हैं और दिन
 में सूर्य की किरणों से प्रकाशमान नहीं रहते और आपके गुण तीन लोक को भी उल्लंघन
 कर सर्वत्र व्याप्त रहे हैं जिन को कोई भी हटा नहीं सका ॥

पूर्ण चन्द्र ज्योति छविवन्त । तम गुण तीन जगत् लंघंत ॥
 एक नाथ त्रिभुवन आधार । तिन विचरत को सकै निवार ॥१४

१४—छवि = शोभा । लंघंत = पारजाना । नाथ स्वामी आधार = आश्रय ।
 निवार = हटाना ॥

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशांगनाभि,
नीतं मनागपिमनो न विकारमार्गम् ।
कल्पांतकालमरुता चलिताचलेन,
किं मन्दराद्रिशिखरं चलितं कदाचित् ॥१५॥

चित्र = आश्चर्य । किं = क्या । अत्र = यहां । यदि = जेकर । ते = तुम्हारा ।
त्रिदश = देवता । अंगना = स्त्री । नीतं = लिजाया गया । मसाक् = थोड़ासा । अपि =
भी । मनः—दिल । न—नहीं । विकारमार्ग = विकार का रास्ता । कल्पान्तकाल =
प्रलयकाल । मरुत्—पवन(हवा) । चलता चल—हिला दिये हैं पहाड़ जिसने । किं =
क्या । मन्दराद्रि = मन्दिराचल पहाड़ (मेरु) । शिखर = चोटी । चलितं = हिलता
है । कदाचित् = कभी भी ॥

अन्वयार्थ—हे प्रभो यदि (अगर) अप्सराओं से आपका मन थोड़े से विकार-
मार्ग (काम विकार) पर नहीं लाया गया तो इस में आश्चर्य ही क्या है ॥

हिलादिये हैं पहाड़ जिसने ऐसे प्रलय काल की वायु करके क्या कभी मन्दिराचल
(मेरु) पहाड़ की चोटी हिल जाती है (कभी नहीं) ॥

भावार्थ—हे स्वामिन् जैसे प्रलय की वायु सभी पहाड़ों को हिलाती है परन्तु
मेरु को नहीं हिला सकती तैसे ही इन्द्रादिकों के भी मन को विकार उपजाने वाली
अप्सरा यदि आप के मनको नहीं हिला सकी तो इस में कोई आश्चर्य नहीं है । क्योंकि
आप का मन निष्कम्प है उसे कोई भी कम्पायमान नहीं कर सका ॥

जो सुरतिय विभ्रम आरम्भ ।

मन न ढिगो तुम सो न अचंभ ॥

अचल चलावे प्रलय समीर ।

मेरु शिखर ढिगमगे न धीर ॥१५

१५—सुरतिय = देवांगना । विभ्रम = विलास (क्रीडा) अचंभ = आश्चर्य ।
अचल = पहाड़ । समीर = वायु ॥

निर्धूमवतिरपजिततैलपूरः,

कृतस्नं जगन्नयमिदं प्रकटीकरोषि ।

गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां,

दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ जगत्प्रकाशः ॥१६॥

निर्धूम = धूँ से रहित । वति = (वत्सी) अपजित = रहित । तैलपूर = तेल का प्रवाह । कृतस्नं = सकल (तमाम) । जगन्नय = त्रिलोकी । इदं = यह । प्रकटीकरोषि = प्रकाश करते हो । गम्यो = प्राप्त । न = नहीं । जातु = कभी भी मरुत् = हवा । चलिताचलानां = हिलानेवाले हैं पहाड़ जिन्होंने, दीप = दीवा । अपर = दूसरा । त्वं = तुम । असि = हो । नाथ = स्वामिन् । जगत् प्रकाशः = जगत् को प्रकाश देने वाला ।

सन्वयार्थ—हे भगवन् धूँवां वत्सी तेल इनसे रहित लकल इस त्रिलोकी को प्रकाश (प्रकट) करता हुआ पर्वतों के हिलाने वाली भी वायु से कभी न हिलने वाला जगत् का प्रकाशक तू एक दूसरा दीवा है ॥

भावार्थ—हे प्रभो ! दीपक अल्प देशका प्रकाशक और आप त्रिलोकी के प्रकाशक दीपक धूँवां तेल और वत्सी वाला अर्थात् तेलवत्सी के आश्रय है और धूँवां सहित है और हवादि से हिलचल या आभाव को प्राप्त हो जाता है और आप इन से रहित सदा वैदीप्यमान रहने वाले विलक्षण दीपक हैं ॥

धूम रहित वाती गतिनेह ।

परकाशक त्रिभुवन घर येह ॥

वात गम्य नाहीं परचण्ड ।

अपर दीप तुम बले अखण्ड ॥१६॥

१६—धूम = धूँवां । वाती = वत्सी । गति = हिलना । नेह = नहीं । वात = हवा । गम्य = पहुँचना । अपर = दूसरा दीप = दीवा ॥

नास्तं कदाचिदुपयासि न राहुगम्यः,

स्पष्टीकरोषि सहसायुगपज्जगन्ति ।

नांभीधरो दरनिरुद्धमहाप्रभावः,

सूर्याति शायिमहिमासि मुनींद्रलोके ॥१७॥

न = नहीं । अस्त = डूबजाना । कदाचित् = कभी भी । उपयासि = जाता है ।
न = नहीं । राहुगम्यः = राहु करके प्राप्त किया गया । स्पष्टी करोषि = जाहिर करता
है । सहसा = शीघ्र ही । युगपत् = एकदम । जगन्ति = तीन लोक । न = नहीं ।
अभीधर = बादल । उदर = पेट (मध्य) । निरुद्ध = रुका । महा = बड़ा । प्रभाव =
प्रताप । सूर्य = रवि । अति शायि = ज्यादा । महिमा = महारम्य । अस्ति = हैं । मुनीन्द्र
= मुनीश्वर । लोके = संसार में ॥

अन्वयार्थ—हे प्रभो ! तू न कभी अस्त होता है न राहु से प्राप्त किया जाता
है और शीघ्र तीनलोकों को एक दम प्रकाश करता है तथा नहीं रुका बादलों के
बीच बड़ा प्रभाव जिसका सो ऐसा तू संसार में सूरज से अतिशय महिमा युक्त है ।

भावार्थ—हे भगवन् यदि आपको मैं सूर्य की उपमा दूँ तो सूर्य संध्याकाल
अस्त होजाय है अमावस के दिन ग्रहण में राहु से प्रसा भी जाय और जगत् को क्रम
से प्रकाशे है तथा बादलों के बीच भी आजाय सो आप में यह दोष कोई भी नहीं है
आप सर्व दोष रहित निर्विघ्न निरंतर सदा काल तीन लोक को प्रकाशे हैं इसलिये
आप निरुपम कहिये उपमा रहित महान् तेजस्वी सूर्य हैं ॥

छिप हो न लिपो राहु की छाहिं ।

जग प्रकाशक हो छिन माहि ॥

घन अनवर्त्त, दाह विनिवार ।

रवितें अधिक धरो गुणसार ॥ १७ ॥

१७—लिपो = ढका जाना । घन अनवर्त्त = बादल से न ढका जाना । दाह
= गरमी । विनिवार = इटाना । रवि = सूर्य ।

नित्योदयंदलितमोहमहान्धकारं,
 गम्यं न राहुवदनस्य नं वारिदानाम् ।
 विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्पकान्ति,
 विद्योत यज्जगदपूर्वशशाङ्कविम्बम् ॥१८॥

नित्योदय = सर्वकाल में उगा । दलित = दला गया । मोह = भ्रान्त ।
 महान्धकार = बड़ा भारी अन्धेरा । गम्यं = प्राप्त होने योग्य । न - नहीं । राहुवदन =
 राहु का मुख । न = नहीं । वारिद = वादल । विभ्राजते । शोभता है ।
 तव = तुम्हारा । मुखाब्ज = मुखरूपकमल । अनल्प = बहुत कान्ति = शोभा । विद्योत
 = प्रकाश । जगत् = विश्व । अपूर्व = नया । शशाङ्कविम्ब = चन्द्रमण्डल ॥

अन्वयार्थ—हे प्रभो ! सदा उगा हुआ नाश कर दिया है मोहरूप महान्
 अन्धकार जिसने राहु के मुख में न माने वाला, न वादलों से ढका जाने वाला तथा
 बड़ी शोभा वाला आपका मुख रूप कमल जगत् को प्रकाशता हुआ एक नया चन्द्र
 मण्डल है ॥

भावार्थ—चाँद कृष्ण पक्ष में क्षीण होय तथा शुक्ल में बड़े और पूर्णमासी को
 राहु से प्रला जाय । और आपके मुख में यह कोई भी दोष नहीं सो आपके मुख एक
 विलक्षण चन्द्रमा है । अर्थात् किसी काल में भी नहीं मंद होय है ज्योति जिस की
 ऐसे आप जगत् को प्रकाश करने वाले एक अद्भुत जाति के चन्द्रमा है ॥

सदा उदित विदलित तम मोह ।

विघटतमेघ राहु अविरोह ॥

तुम मुख कलम अपूर्व चन्द्र ।

जगत् विकाशी ज्योति अमन्द ॥१८॥

१८—तम = अंधेरा । मोह = भ्रान्त । विघटित = भङ्ग । अविरोह = ढका
 जाना । अपूर्व चन्द्र = नया चान्द । विकाशी = प्रकाशने वाला । अमन्द = अक्षुब्ध ।

किं शर्वरीषु शशिनाऽङ्गिविवस्वतावा,
युष्मन्मुखेन्दुदलितेषु तमस्सुनाथ ।
निष्पन्नशालिबनशालिनि जीवलौके,
कार्यं कियञ्जलधरैर्जलभारनामैः ॥१६॥

किं = क्या । शर्वरी = रात । शशिना = चांद से । अङ्गि = दिन में । विवस्वाम् = सूर्य । वा = अथवा । युष्मद् = आपके । मुखेन्दु = मुखरूप चांद । दलित = दलेगये तमः = अन्धेरा । नाथ = स्वामिन् । निष्पन्न = पैदा हुए । शालिबन = चावलों के खेत शाली = शोभने वाले । जीव लोक = मनुष्यलोक । कार्यं = काम । कियत् = कितना । जलधर = मेघ । जलभार = पानी का भार । नम्र = नीचे हुवे ।

अन्वयार्थ—हे स्वामिन् ! आपके मुखरूप चांद से अन्धेरे के नष्ट होजाने पर रात में चांद से और दिन में सूर्य से क्या प्रयोजन है जब जगत् पके हुए धानों के समूहसे शोभता है तब जलभार से नीचे हो रहे जो मेघ हैं उनसे क्या फायदा है ॥

भावार्थ—हे भगवन् जैसे चावलों के खेत पक जाने पर सजल मेघ का झुक कर आना अकारण है वैसे ही जब रात के अन्धेरे को चांद दूर करता है और दिन में सूर्य अन्धेरे को दूर करता है सो यदि दोनों घर्कों के अंधेरे को तुम्हारे मुखरूपी चंद्रमा ने दूर करदिया तो तब इन की क्या जरूरत है ॥

निश दिन शशि रवि को नहीं काम ।

तुम मुख चन्द हरे तम धाम ॥

जो स्वभाव से उपजे नाज ।

सजल मेघ तो कौन हु काज ॥ १९ ॥

ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं,
 नैवं तथा हरिहरादिषु नायकेषु ।
 तेजः स्फुरन्मणिषु याति यथा महत्त्वं,
 नैवं तुकाचशकले किरणा कुलेऽपि ॥२०॥

ज्ञानं = ज्ञान । तथा = जैसे । त्वयि = आप में । विभाति = शोभता है । कृत = किया गया । अवकाश = जगह । न = नहीं । एवं = ऐसे । तथा = तैसे । हरि = विष्णु-हर = शिव । नायक = मालिक । तेजः = तेज । स्फुरन् = चमकीली । मणि = रत्न । याति = पाता है । यथा = जैसे । महत्त्वं = बड़ाई । न = नहीं । एवं = ऐसे । काच = काच । शकल = टुकड़ा । किरण = किरण । आकुल = व्याप्त । अपि = भी ॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र कृतावकाश ज्ञान जैसे घाप में प्रकाशता है वैसे हरिहरादिक देवों में नहीं जैसे प्रकाशमान मणियों में तेज महत्त्व को प्राप्त होता है वैसे किरणों से व्याप्त काच के खण्ड में नहीं प्राप्त होता ॥

भावार्थ—हे भगवन् जैसे जितनी चमक रत्नों में होती है उतनी काच के टुकड़ों में नहीं होती वैसे ही जैसा अखण्डित ज्ञान आप में देवीग्यमान है वैसे हरिहरादिक देवों में नहीं है ॥

जो सुबोध सोहे तुम माहिं ।

हरिहरादिक में सो नाहिं ॥

जों द्युति महारत्न में होय ।

काच खंड पावे नहिं सोय ॥ २० ॥

मन्ये वरं हरिहरादय एव दृष्टा,
 दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति ।
 किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः,
 कश्चिन्मनोहरति नाथ भवांतरपि ॥२१॥

मन्ये = मानताहं । वरं = बहुत अच्छा । हरिहरादयः = हरिहरादिक । एव = ही । दृष्टा = देखे गए । दृष्टेषु = देखे हुए । येषु = जिनके । त्वयि = तेरे में । तोष = खुशी । एति = प्राप्त होती है । किं = क्या । वीक्षितेन = देखे हुवे करके । भवता = आप करके । भुवि = पृथ्वी में । येन = जिस से । न = नहीं । अन्यः = दूसरा । कश्चित् = कोई । मन = दिल । हरति = चुराता है । नाथ = स्वामिन् । भवान्तर = दूसरा जन्म । अपि = भी ॥

अन्वयार्थ—हे प्रभो ! बहुत अच्छा हुआ कि हरिहरादिक, मेरे कर देखे गये जिनके देखे जाने पर दिल आप विषे संतोष को प्राप्त हुआ भूमि पर आपके देखने से दूसरा कोई जन्मान्तर में भी मन को हरण नहीं कर सकता ॥

भाषार्थ—हे भगवन् ! मेरे वास्ते यह बड़ी खुशी की बात है कि मैंने हरिहरादिक दूसरे देव भी देख लिये क्योंकि उनके देखने से आपको वीतराग रूप पहिचान मेरा दिल आप विषे ही संतोष को प्राप्त हुआ अब किसी जन्मान्तर में भी मेरे मन को दूसरा कोई हरण नहीं कर सकता ॥

नाराच छन्द ।

सरागदेव देख मैं भला विशेष मानिया ।
 स्वरूप जाहि देख वीतराग तू पछानिया ।
 कछु न तोहि देख के जहां तुही विशेषिया ।
 मनोज्ञ वित्त चोर और भूल हू न पेखिया ॥२१॥

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्,
 नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता ।
 सर्वा दिशो दधति भानि सहस्ररश्मिं,
 प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम् ॥२२॥

स्त्री=औरत । शत=सौ (१००) । शतशः=सैंकड़ों । जनयन्ति=पैदा करती हैं । पुत्रान्=बच्चों को । न=नहीं । अन्या=दूसरी । सुत=पुत्र । त्वदुपम=तेरे समान । जननी=माता । प्रसूता=पैदा करती । सर्वा=सभी । दिशा=दिशा । दधति=धारण करती हैं । भानि=ताराओं को । सहस्ररश्मिं=सूर्य । प्राची=पूर्व दिशा । पव=ही । दिक्=दिशा । जनयति=पैदा करती है । स्फुरत्=प्रकाशमान अंशु=किरणों । जाल=समूह ॥

अन्वयार्थ—हे भगवन् सैंकड़ों स्त्रियों सैंकड़ों पुत्रों को जनती हैं परन्तु दूसरी माता ने तुम्हारे समान पुत्र पैदा नहीं किया । सभी दिशाएँ तारों को धारण करती हैं । लेकिन प्रकाशमान होरही हैं किरणों जिसका ऐसे सूर्य को तो पूर्वदिशा ही पैदा करती है ॥

भावार्थ—हे भगवन् जैसे तारों को तो हर एक दिशा धारण करती हैं परन्तु सूर्य को तो पूर्व दिशा ही उदय करती है इसी प्रकार अनेक माता अनेक पुत्र जन्मती हैं परन्तु तुम्हारे समान पुत्र सिवाय आपकी माता के किसी दूसरी माता के उत्पन्न नहीं होता ॥

अनेक पुत्रवन्तनी नितम्बनी सुपूत हैं ।
 न तो समान पुत्र और मात ते प्रसूत हैं ॥
 दिशा धरन्ततारका अनेक कोटिकोऽग्निने ।
 दिनेश तेजवन्त एक पूर्वही दिशा जने ॥२२॥

२२—नितम्बनी=स्त्री । प्रसूत=पैदा करना । धरन्त=धरती है । तारका=तारे । दिनेश=सूर्य ।

त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुमांस,
मादित्यवर्णममलं तमसः पुरस्तात् ।
त्वामेव सम्मगुपलभ्य जयन्ति मृत्युं,
नान्यः शिवः शिवपदस्य मुनीन्द्र पंथाः ॥२३॥

त्वां=तुझे । आमनन्ति=मानते हैं । मुनि=मुनि । परम=प्रकृष्ट शक्ति वाले । पुमान्=पुरुष । आदित्य=सूर्य । वर्ण=रंग । अमल=शुद्ध । तमसः=अन्धेरे से । पुरस्तात्=आगे । त्वां=तुझे । एव=ही । सम्भक्=अच्छी भाँति उपलभ्य=मालूम करके । जयन्ति=जीतते हैं । मृत्युं=मौत । न=नहीं । अन्यः=दूसरा । शिवः=कल्याण रूप । शिवपद=मुक्ति । मुनीन्द्र=मुनीश्वर । पंथाः=रास्ता ॥

अन्वयार्थ—हे मुनीन्द्र मुनि तुझे परम पुरुष अन्धेरे के आगेसूर्य के तुल्य 'प्रभाव' वाले शुद्ध मानते हैं और मनुष्य आपकी भली प्रकार जानकर मृत्यु को जीतते हैं और मुक्ति जाने के लिये और कोई दूसरा रास्ता नहीं है ॥

भावार्थ—हे मुनीन्द्र मुनिजन आप को महान् पुरुष कर्म रूपी अंधेरे के आगे सूर्य समान शुद्ध वर्ण मानते हैं और आपकी भले प्रकार जान कर मृत्यु को जीतते हैं अर्थात् सिद्ध पद को प्राप्त होते हैं क्योंकि सिवाय आपके मुक्ति जाने का और कोई दूसरा रास्ता नहीं है ॥ २३ ॥

पुराण हो पुमान हो पुनीत पुण्यवान् हो ॥

॥ १. कहें मुनीश्र अन्धकार नाश को सुभान हो ।

महन्त तोहि जान के न होय वश काल के ।

॥ १. न और मोक्ष मोक्ष पन्थ देव तोहि टालके ॥२३॥

त्वामव्ययं विभुमचिंत्यमसंख्यमाद्यं,
 ब्रह्माण्मीश्वर अनंत अनंग केतुम् ।
 योगीश्वरं विदितयोगमनेकमेकं,
 ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदन्ति संतः ॥२४॥

त्वां—तुझे । अव्यय = अविनाशी । विभु = व्यापक । अचिंत्य = जिस का चिंतन न हो । असंख्य = अनगिणन । आद्य = आदिका । ब्रह्मन् = ब्रह्मा जी । ईश्वर = परमेश्वर । अनन्त = जिस का अन्त नहीं । अनङ्गकेतु = महादेव । योगीश्वर = योगी-राज । विदितयोग = जाना है योग जिसने । अनेक = अनेक रूप । एक = अद्वितीय । ज्ञानस्वरूप = ज्ञान (बोधरूप) । अमल = शुद्ध । प्रवदन्ति = कहते हैं । संतः = सन्त (सज्जन) ॥

अन्वयार्थ—हे प्रभो संत जन तुझे अविनाशी व्यापक, अचिंत्य असंख्य आद्य ब्रह्मा ईश्वर अनन्त विष्णु काम क्त्वु (शिव) योगीश्वर योग के जानने वाले अनेक एक ज्ञान रूप अमल (शुद्ध) कहते हैं ॥

भावाार्थ—हे प्रभो संतजन तुझे अविनाशी सर्व व्यापक अचिंत्य असंख्य आद्य (पहिला) ब्रह्मा ईश्वर अनंत अनंगकेतु शिव योगीश्वर विदितयोग अनेक ज्ञान स्वरूप शुद्ध कहते हैं ॥

अनन्त नित्य चित्तकी अगम्यरम्य आदि हो ।

असंख्य सर्वव्याप ब्रह्मविष्णु हो अनादि हो ॥

महेश काम केतु योग ईश योग ज्ञान हो ।

अनेक एक ज्ञान रूप शुद्ध सन्त मान हो ॥२४॥

बुद्ध स्त्वमेव विबुधार्चित बुद्धिबोधात्,
 त्वं शं करोसि भुवनत्रयशंकरत्वात् ।
 धातासि धीरशिवमार्गविधेर्विधानात्,
 व्यक्तं त्वमेव भगवन् पुरुषोत्तमोऽसि ॥ २५ ॥

बुद्ध = बुद्ध (ज्ञानी) । त्वं = तू । एव = ही । विबुध = देवता । अर्चित = पूजित ।
 बुद्धि बोध = बुद्धि का बोध (प्रकाश) । त्वं = तू । शंकरः = शिव । असि = है । भुवन
 त्रय = तीनलोक । शंकर = मंगलकर्ता । धाता = ब्रह्मा । धीरः धीरजवाला । शिवमार्ग =
 मुक्ति का रास्ता । विधि = तरीका । विधान = बनाना । व्यक्त = साफ । त्वमेव = तुही
 भगवन् = परमेश्वर वाला । पुरुष = मनुष्य । श्रेष्ठ । पुरुषोत्तम = विष्णु । असि = है ॥

अन्वयार्थ—हे देवताओं से पूजित बुद्धि को बोध करने से तुही बुद्ध है तीन
 सुधनों को कल्याण करने से तू शंकर है । हे धीर मोक्षमार्ग की विधि (तरीके) के
 विधान से तू (ब्रह्मा) है । हे भगवन् तुही स्पष्ट पुरुषोत्तम है ॥

भावार्थ—हे धीर देवताओं को पूजित तू बुद्धि का बोध करने से बुद्ध है
 तीन लोक के मंगल करता होने से तुही शंकर है और मोक्षमार्ग की विधि करने
 वाला होने से तुही विधाता है । और तुही पुरुषोत्तम कहिये त्यों में उत्तम (श्रेष्ठ) है ॥

तुही जिनेश बुद्ध हो सुबुद्धि के प्रमान से ।

तुही जिनेश शंकरो जगन्नयीविधान से ॥

तुही विधात है सही सुमोक्षपन्थधार से ।

नरोत्तमो तुही प्रसिद्ध अर्थ के विचार से ॥ २५ ॥

तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्तिहरायनाथ,
 तुभ्यं नमः क्षितितलामलभूषणाय ।
 तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय,
 तुभ्यं नमी जिनभवोदधिशीषणाय । २६ ।

तुभ्यं = आप के ताई । नमः = नमस्कार हो । त्रिभुवन = त्रिलोकी । अर्ति = पीडा । हर = हरणेवाले । नाथ = स्वामिन् । तुभ्यं = तुझे । नमः = प्रणाम हो । क्षिति-तल = पृथ्वी तल (भूतल) । अमल = शुद्ध । भूषण = जेवर । तुभ्यं = आपके ताई । नमः = प्रणाम । त्रिजगत् = त्रिलोकी । परमेश्वर = स्वामी । तुभ्यं = आपको । नमः = नमन हो । जिन = जिन । भवोदधि = संसाररूप समुद्र । शोषण = सुकाने वाले ॥

अन्वयार्थ—हे जिन तीन भवनों के दुःख दूर करने वाले आप को नमस्कार हो । हे पृथ्वी में शुद्ध भूषण रूप आप को नमस्कार हो । हे तीन जगत् के परमेश्वर आप को नमस्कार हो । हे संसार समुद्र के सुकाने वाले आप के ताई नमस्कार हो ॥

भावार्थ—इस श्लोक में श्रीमानतुंग भाचार्य ने भगवान् के भिन्न भिन्न गुण धरणन कर बारंबार नमस्कार करी है ॥

नमो कुरुं जिनेश तोहि आपदा निवार हो ।

नमो कुरुं सुभूरि भूमि लोक के सिङ्गार हो ॥

नमो कुरुं भवाब्धि नीर रास शोष हेत हो ।

नमो कुरुं महेश तोहि मोक्ष पन्थ देत हो ॥ २६ ॥

२६—आपदा = दुःख । भूरि = बहुत । भवाब्धि = संसार समुद्र । नीर रास = पानी का समुद्र । महेश = शिव ।

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषैः
 स्तवं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश ।
 दोषैरुपात्तविविधाश्रयजातगर्वैः,
 स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि ॥ २७ ॥

कः = कौन । विस्मय = आश्चर्य । अत्र = यहां । यदि = अगर । नाम = प्रसिद्ध
 गुणै = गुणोंकर । अशेष = सकल । त्वं = तू । संश्रितः = आश्रयकिया । निरवकाशतया
 = किसी जगह के न मिलने से मुनीश = मुनीन्द्र । दोष = दोष । उपात्त = याया ।
 विविध = अनेक प्रकार के । आश्रय = आसरा । जात = हुआ । गर्व = अहंकार । स्वप्नान्तर
 = सुपने में । अपि = भी । न = नहीं । कदाचिदपि = कभी भी । ईक्षितः = देखा गया ।
 असि = है ॥ २७ ॥

अन्वयार्थ—हे मुनीश यदि समस्त गुणों ने निरवकाश होने से तू आश्रय
 किया है तो इस में क्या आश्चर्य है । मिल गए हैं अनेक आश्रय जिन को इस लिये
 उपेक्षित हुआ है अहंकार जिनहें ऐसे दोषों से स्वप्न में भी कभी नहीं देखा गया ॥

भावार्थ—हे भगवन् जब समस्त गुणों को कोई और जगह नहीं मिली तब
 उन्होंने आपका आश्रय लिया है सो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है पानी तो नीचाण
 की तरफ ही आवेगा सो गुण तो गुणी के आश्रय ही उठेंगे और चूंकि दोषों को हर
 जगह आसरा मिल गया है इस लिये उन्होंने कभी स्वप्नमें भी आपको नहीं देखा अर्थात्
 आप में सर्व गुण ही गुण हैं, दोष कोई भी नहीं है ॥

॥ १५ मात्रा चौपाई ॥

तुम जिनवर पूर्ण गुण भरे ।

दोष गर्व कर तुम पर हरे ॥

और देवगण आश्रय पाय ।

सुपन न-देखे तुम फिर आय ॥ २७ ॥

उच्चैरशोकतरुसंश्रितमुन्मयूख,
 माभाति रूपममलं भवतो नितांतम् ।
 स्पष्टोल्लसत्किरणमस्ततमोवितानं,
 विम्बं रवेरिव पयोधरपापर्ववर्ति ॥ २८ ॥

उच्चैः = ऊंचा । अशोकतरु = अशोकवृक्ष । संश्रित = आश्रयक्रिया । उन्मयूख = ऊंची किरणों वाला । आभाति = शोभता है । रूप = रंग । अमल = शुद्ध । भवतः = आपका । नितांत = बहुत । स्पष्ट = साफ । उल्लसत् = चमक रही । किरण = किरणें । अस्त = नाशक्रिया । तमोवितान = अन्धेरा रूप बन्दोबा । विम्ब = प्रतिबिम्ब । रवेः = सूर्य का श्व = जैसे । पयोधर = मेघ । पापर्ववर्ती = पास होने वाला ॥

अन्वयार्थ—हे स्वामिन् जैसे स्पष्ट प्रकाशमान किरणों वाला अन्धकार को समूह को दूर करने वाला और बादल के पास होने वाला सूर्य का प्रतिबिम्ब (मण्डल) हो जैसे ऊंचे अशोक तरुके पास ऊंची किरणों वाला शुद्ध आपका रूप । निरन्तर शोभता है ॥

भावार्थ—बादल भी नीला होय है और अशोक वृक्ष भी नीला होता है । सो जैसे बादलों के पास ऊंचा सूर्य शोभता है वैसे ही हे भगवन् आप भी अशोक वृक्ष के पास शोभते हो ॥

तरु अशोक तल किरण उदार ।

तुम तन शोभित है अंविकार ॥

मेघ निकट उर्यु तेज फुरन्त ।

दिन कर दिपे तिमिर निहन्त ॥ २८ ॥

सिंहासने मणिमयूखशिखात्रिचिने,
 विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम् ।
 विभवं विद्यद्विलसदंशुलतावितानं,
 तुङ्गोदयाद्रिशिरसीवसहस्ररश्मिः ॥२६॥

१११. सिंहासन = चौकी। मणिमयूख = मणिमोंकी किरणें। शिखा = ज्वाला। विचित्र = कई रंगका। विभ्राजते = शोभता है। तव = तुम्हारा। वपुः = शरीर। कनक = सोना। अवदात = शुद्ध। विव = प्रतिविम्ब। विद्यत् = आकाश। विलसत् = शोभिमान। अंशुलता = किरण रूपीलता। वितान = विस्तार। तुंग = ऊंचा। उदयाद्रि = उदयचल। शिरः = चोटी। श्व = जैसे सहस्ररश्मिः = सूर्य ॥

अन्वयार्थ—ऊंची उदयाचल पहाड़ की चोटी पर आकाश में ब्रमक रहा है किरण रूप लताओं का समूह जिसका पैसा सूर्य का मण्डल जैसे शोभे है वैसे मणियों की किरणों के तेज (ज्वाला) से अनेक वर्ण के सिंहासन पर सोने के समाने शुद्ध तेरा शरीर शोभता है ॥

भावार्थ—हे भगवन् जैसे उदयाचल पर्वत पर सूर्य शोभता है वैसे ही अनेक प्रकार के रत्नोंकर जड़ितसिंहासन पर आपका स्वर्ण समान पीतवर्ण शरीर शोभता है अर्थात् यहां आचार्य ने स्वर्ण के सिंहासन पर तिष्ठते हुए भगवान् की उदयाचल की चोटी पर आरूढ़ सूर्य की उपमा दी है ॥

सिंहासनः मणि किरण विचित्र ।

तिस पर कंचन वरण पवित्र ॥

तुम तन शोभित किरण विधार ।

॥ उद्यो उदयाचल रवि तम हार ॥ २९ ॥

कुन्दावदातचलचामरचारु शोभं, ।

विभ्राजते तव वपुः कलधौतकांतम् ।

उद्यच्छशांकशुचिनिर्भरवारिधारं, ।

मुञ्चैस्तटंसुरगिरेरिवशातकौभम् । ३० ।

कुन्द = कुन्दलफूल । अवदात = सफेद । चल = चंचल । चामर = चंवर । चान्द = मनोहर । शोभ = शोभा । विभ्राजते = शोभता है । तव = तुम्हारा । वपु = शरीर । कलधौत = सौना । कांत = सुन्दर । उद्यत् = ऊगा हुआ । शशांक = चांद । शुचि = शुद्ध निर्द्धर = झरणा । वारि = पानी । धार = धारा । ऊञ्चै = ऊंचा । तटं = किनारा । सुरगिर = सुमेरु । इव = जैसे । शातकौभम् = सौने का ॥

अन्वयार्थ—हे भगवन् उद्य हो रहे चांद के समान शुद्ध निर्द्धर (झरणों) की झलधारों घाला सोने के ऊंचे सुमेरु के तट (किनारे) की तरह कुन्द के फूल के तुल्य सफेद हिलते चंवरों से मनोहर शोभावाला सोने के समान सुन्दर भापका शरीर अत्यन्त शोभित हो रहा है ॥

भावार्थ—हे भगवन् जैसे सफेद जलके झरणों कर सहित स्वर्ण मय सुमेरु पर्वत शोभे है ऐसे ही कुन्द के पुष्पों के समान सुफेद चंवरों के डलन सहित भाप का पीतवर्ण शरीर शोभे है ॥

कुन्द पद्मप सित चमर हुलंत ।

कनक वरण तुम तन शोभंत ॥

उयो सुमेरु तट निर्मलं कांति ॥

झरणा झरै नीर उमगांति ॥ ३० ॥

छत्रत्रयं तव विभाति शशांक कांत,

मुच्चैः स्थितं स्थगितभानु करप्रतापम् ।

मुक्ताफलप्रकरजालविवृद्धशोभं ।

प्रख्यापयत्त्रिजगतः परमेश्वरत्वम् ॥३१॥

छत्रत्रयं = तीनछत्र । तव = तुम्हारे । विभाति = शोभते हैं । शशांक = चांद । कांत = सुन्दर । उच्चैः = ऊचा । स्थित = मौजूद । स्थगित = ढकदेना । भानु = सूर्य । कर = किरणें । प्रताप = प्रकाश । मुक्ताफल = मोती । प्रकर = समूह । विवृद्ध = बढी । शोभं = शोभा । प्रख्यापयत् = कहना हुआ । त्रिजगतः = त्रिलोकी का । परमेश्वरत्व = परमेश्वरपणा ।

अन्वयार्थ—हे प्रमो चांद के तुल्य कांतिवाले होने से मनोहर ऊँचे स्थित ढकदिया है सूर्य की किरणों का तेज जिन्होंने और मोतियों की लड़ियों के समूह से बढी है शोभाजिनकी तथा तीनलोकों की परमेश्वरता (स्वामिता) को प्रकट करते हुए आपके तीन छत्र शोभते हैं ।

भावार्थ—एक लोक का जो स्वामी हाता है उसके सिर पर एक छत्र शोभता है । और भगवान के सिर पर तीन छत्र होते हैं सो भाचार्य ने यहाँ यह प्रकट किया है कि यह मोतियों की लड़ियों से जड़े हुए तीन छत्र भगवान के सिरपर दृढते हुए यह बतला रहे हैं कि यह तीन लोक के स्वामी हैं ॥

ऊंचे रहैं सूर दुति लोप ।

तीन छत्र तुम दीपै अगोप ॥

तीन लोक की प्रभुता कहैं ।

मोती झालर सो छविलहैं ॥ ३१ ॥

गंभीरताररवपूरितदिग्विभाग,

रत्रैलोक्यलोकशुभसंगमभूतिदक्षः ।

सहर्मराजजयघोषणघोषकः सन्खे,

दुन्दुभिध्वनति ते यशसः प्रवादी ॥३२॥

गंभीर = गहरा । तार = ऊंचा । रव = शब्द । रित = पूर्ण करना । दि-
ग्विभाग = दिशाएँ । त्रैलोक्य = त्रिलोकी । लोक = जन । शुभ = भला । संगम = प्राप्ति
भूति = विभूति । दक्षः = चतुर । सत् = श्रेष्ठा । धर्मराज = धर्म का राज । जयघोषण
= जयकारशब्द । घोषकः = बजाने वाला । सन् = है । ख = आकाश । दुन्दुभि =
बाजा । ध्वनति = बजता है । ते = तुम्हारे । यशः = कीर्ति । प्रवादी = कहने वाला ॥

भावार्थ—गंभीर और ऊँचे शब्द से पूर (पूर्ण) दिये हैं दिशाओं के विभाग
जिसने और त्रिलोक्य के रहने वाले जीवों को शुभ ऐश्वर्य देने में चतुर तथा उत्तम
धर्म का जो राज्य उसके जयकार शब्द का उच्चारण करने वाला जो आकाश में
दुन्दुभि (बाजा) बजता है वह आपके यशका कथन करने वाला है ॥

भावार्थ—जिनेन्द्र के जो अष्ट प्रतिहार्य में आकाश में बाजा बजता है सो
आचार्य कहते हैं कि सो बाजा मानो दश-दिशों को व्याप्त होकर यह बताता है कि हे
जीवो अब तुम को इस सत्तार के दुःखों को दूर करने वाली सुख रूप विभूति मिलेगी
और मोक्ष मार्ग के चलाने के लिये धर्म का राज प्रवर्तगा ॥

दुन्दुभि शब्द गहर गंभीर ।

चहुं दिश होय तुम्हारे धीर ॥

त्रिभुवन-जन शिव-संगम करे ।

मानो जय जय रव उच्चरे ॥ ३२ ॥

मंदारसुन्दरनमेरुसुपारिजात,

सन्तानकादिकुसुमोत्कर वृष्टि रूद्धा ।

गंधोदबिंदुशुभमंदमरुत्प्रपाता,

दिव्या दिवः पततिते वचसां ततिर्वा ॥३३॥

मंदार = एक जाति का कल्पवृक्ष । सुन्दर = मनोहर । नमेरु, पारिजात, और संतानक = ये सभी कल्पवृक्ष हैं । कुसुम = फूल । उत्कर = समूह । वृष्टि = बारस उदघा = शुभ । गन्धोद = गन्धोदक । बिन्दु = बूँद । शुभ = उत्तम । मन्द = आहिस्ता चलने वाली । मरुत् = वायु । प्रपाता = पड़ी । दिव्या = आकाश की । दिवः = आकाश पतति = गिरती है । ने तुम्हारी । वचसां = वाणीयों की । तति समूह ॥

अन्वयार्थ—हे प्रभो गन्धोदक की बूँदों से पवित्र मंदमंद पवन करके गिराई हुई मंदार, मनोहर नमेरु श्रेष्ठ पारिजात और संतानक आदि कल्पवृक्षों के पुष्प समूह की जो दिव्यवृष्टि आकाश से गिरती है सो आपके वचनों की पंक्ति खिरती है ।

भावार्थ—यहाँ भाचार्य ने भगवान् को दिव्य वाणी को दिव्य पुष्पों की उपमा दी है कि हे जिनेश ! आप के कल्याणक के समय जो देवता गंधोदक और पुष्पों की वृष्टि करते हैं सो मानो आपके वचनों की पंक्ति ही खिरती है ॥

मंद पवन गंधोदक इष्ट ।

विविध कल्पतरु पुहप सवृष्ट ॥

देव करै विकसत दल सार ।

मानो द्विज पंक्ति अवतार ॥ ३३ ॥

शुभ्रमहप्रभावलयभूरिविभाविभोस्ते,
 लोकत्रयद्युतिमतां द्युतिमाक्षिपन्ती॥
 प्रोद्यद्दिवाकरनिरंतरभूरिसंख्या,
 दीपयाजयत्यपिनिशामपिसोमसौम्याम् ।

शुभ्रम् = शोभायमान् । प्रभा - कांति । वलय = मण्डल । भूरि = अधिक ।
 विभा = प्रभा । विभु = प्रभु । ते = तेरी । लोकत्रय = तीनलोक । द्युतिमत् = कांति
 वाला । द्युति = शोभा । आक्षिपन्ती = तिरस्कार करती है । प्रोद्यत = ऊगा हुआ ।
 दिवाकर = सूर्य । निरंतर = लगातार । भूरि = जियादा । संख्या = गिणती । दीपया =
 कांति से । जयति = जीतती है अपि = भी । निशा = रात । अपि = भी । सोम = चन्द्र
 सौम्या = ठंडी ।

अन्वयार्थ—हे भगवन्, आपकी शोभा वाले कांति के भामण्डल की अधिक
 प्रभा तीन लोकों के तेजस्त्रियों के तेज को तिरस्कार करती हुई उदय हुए अनेक
 सूर्यों के समान तेज वाली भी चांद के समान ठंडी हुई हुई रात को भी कांति से
 जीत लेती है ॥

भावार्थ—हे प्रभो आपके भामण्डल की ज्योति का इतना तेज है कि तीनलोक
 में जितने सूर्यादिक पदार्थ हैं सर्व मंद नासते हैं इतना तेजस्वी होने पर भी सौम्य-
 पने में रात्रि के चन्द्रमा का शीतलता को भी जीतता है ॥

तुम तन भामण्डल जिन चन्द्र ।
 सब दुतिवन्त करत है मन्द ॥
 कोटि संख्य रवि तेज छिपाय ।
 शशिनिर्मल नित करै अछाय ॥ ३४ ॥

स्वर्गापवर्गगममार्गविमार्गशोषटः,

सद्धर्मतत्त्वकथनैकपटुस्त्रिलोक्याः ।

दिव्यध्वनिर्भवति ते विशदार्थसर्व,

भाषास्वभावपरिणामगुणैः प्रयोज्यः ॥ ३५ ॥

स्वर्ग = देवलोक । अपवर्ग = मोक्ष । गम = जाना । मार्ग = रास्ता । विमार्गण = खोजना । शोषट = मित्र । सद्धर्म = श्रेष्ठधर्म । तत्त्वकथन = यथार्थकथन । एक पटु = एक छत्रुर । त्रिलोकी = तीनलोक । दिव्यध्वनि = दिव्य शब्द । (वाणी) । भवति = होती है । ते = तुम्हारी । विशद = उज्वल । अर्थ = अर्थ । सर्व = सकल । भाषा = जुवान । स्वभाव = आदत । परिणाम = नतीजा । गुण = गुण । प्रयोज्य = प्रयोग किया ।

अन्वयार्थ—हे विभो-स्वर्ग और मोक्ष में जाने के लिये जो रास्ता उसके दूढ़ने वा बताने में मित्र (सहायक) तीनलोकों में सच्चे धर्म के तत्व कहने में एक पण्डित साफ साफ अर्थ तमाम जुवाने स्वभाव (आदत) परिणाम (नतीजा) और गुणों करके मिली हुई आप की दिव्य ध्वनि खिरती है ॥

भावार्थ—हे भगवन् तीन लोक में जितने प्रदार्थ हैं सर्व का स्वभाव (खालि-यत) और स्वर्ग और प्राचीन सत्यधर्म के असंली तत्वों को दर्शाती हुई सर्व भाषाओं में समझ आने वाले स्वर्ग और मोक्ष में जाने के लिये सच्चा रास्ता बताती हुई जगत् के जीवों की हित आपकी निर्मल दिव्यध्वनि खिरती है ॥

स्वर्ग मोक्ष मारग संकेत ।

परम धर्म उपदेशन हेत ॥

दिव्य वचन तुम खिरै अगाध ।

सब भाषा गर्भित हितसाध ॥ ३५ ॥

उन्निद्र हेमनवपंकजपुञ्जकांती,
 पर्युल्लसन्नखमयूखशिखाभिरामौ ।
 पादौपदानि तव यत्र जिनेन्द्र धत्तः,
 पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति ॥३६॥

उन्निद्र = खिला । हेम = सोना । नव = नया । पंकज = कमल । पुञ्ज = समूह
 कांति = शोभा । पर्युल्लसत् = बहुत चमकीला । नख = नाखून । मयूख = किरणों ।
 शिखा = लाल (ज्वाला) । अभिराम = मनोहर । पादौ = चरण । पदानि = जगह ।
 तव = तेरे । यत्र = जहाँ । जिनेन्द्र = जिनेश । धत्तः = धरते हैं । पद्म = कमल । तत्र =
 वहाँ । विबुध = देवता परिकल्पयन्ति = कल्पना करते हैं ॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र खिले हुए सोने के नए कमलों के समूह के समान
 कांति वाले और चमकीले नाखूनों की किरणों की शिखा से मनोहर आपके पांव
 जहाँ जहाँ पग धरते हैं । वहाँ वहाँ देवता कमल रचते हैं ॥

भावार्थ—हे भगवन् चमकती हैं नाखूनों की किरणों की निहायत खूबसूरत
 शिखा जिनकी ऐसे खिले हुए निर्मल सोने के कमलों के समूह की मानिन्द रोशन
 आपके चरण जहाँ जहाँ कदम धरते हैं वहाँ वहाँ देवता कमल रचते हुए चले जाते हैं ॥

॥ दोहा छन्द ॥

विकसित सुवर्ण कमल द्युति ।

नखद्युति मिल चमकाहि ॥

तुम पद पदवी जहाँ धरौ ।

तहाँ सुर कमल रचाहि ॥३६॥

इत्थं यथा तव विभुतिरभूज्जिनेन्द्र,
धर्मोपदेशनविधौ न तथा परस्य ।

यादृक् प्रभादिनकृतः प्रहतान्धकारा,
तादृक् कुतो ग्रहगणस्य विकासिनोऽपि ॥३७

इत्थं = इस प्रकार । यथा = जैसे । तव = तेरी । विभूति = ऐश्वर्य । अभूत् = हुई । जिनेन्द्र = जिनेश्वर । धर्मोपदेशनविधि = धर्मोपदेश करने का तरीका । न = नहीं । तथा = तैसे । परस्य = दूसरेकी । यादृक् = जैसी । प्रभा = कांति । दिन कृत् = रवि । प्रहतान्धकारा = दूर कर दिया है अन्धेरा जिसने । तादृक् = वैसी । कुतो = कहां । ग्रहगण = चांद चंद्रमंडल ग्रहों का समूह । विकासिनः = समकर रहे । अपि = भी ॥

अन्वयार्थ = हे जिनेन्द्र ! इस प्रकार दिव्य ध्वनि वगैरह विभूतियों जैसे आपकी धर्मोपदेश के विधान में हुई वैसी दूसरे उपदेशक की नहीं होती । जैसी अंधेरे के नाश करने वाली प्रभा सूर्य की है वैसी प्रकाशमान ग्रहों के समूह की कहां ॥

भावार्थ—हे प्रभो हे भगवन् शिव मार्ग के बतलाने वाले इस प्रकार दिव्य ध्वनि आदि रूपर वियान की गई जैसी तेरी विभूतियां धर्मोपदेश करने के समय हुई हैं वैसी किसी दूसरे अन्य मतावलंबी देवादिक के नहीं हुई क्योंकि जैसी अन्धेरे के दूर करने वाली सूर्य की ज्योति होती है वैसी दूसरे ग्रहादिक की नहीं होती ॥

ऐसी महिमा तुम विषे ।

और धरै नहिं कोय ॥

सूरज में जो जोत है ।

नहिं तारागण सोय ॥ ३७ ॥

प्रच्योतन्मदाविलविलोलकपोलमूल,
मत्तममद्भ्रमरनादविवृद्धकोपम् ।

ऐरावताभमिभमुद्धतमापतंतं,

दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदाश्रितानाम् ॥ ३८ ॥

इचोतत = गिर रहा । (बह रहा) । मद = मद । आविल = व्याप्त । विलोल = खंचल । कपोल मूल = गण्डस्थल । मत्त = मस्त । भ्रमद् = धूमते हुए । भ्रमर = भौरों । नाद = शब्द । विवृद्ध = बड़ा । कोप = गुस्सा । ऐरावताभ = इन्द्र के हाथी के तुल्य । इम = हाथी । उद्धत = मस्त । आपतत् = आपडता हुआ । दृष्ट्वा = देखकर । भयं = डर । भवति = होता है । नो = नहीं । भवत् = आपके । आश्रित = आसरे वाला ॥

अन्वयार्थ—हे प्रभो ! बह रहे मद से भीगे हुये खंचल गालों के मूल पर मस्त, घूम रहे भौरों के शब्द से बह गया है गुस्सा जिसका इन्द्र के हाथी के समान कांति वाले उन्मत्त परसे आते हुये हाथी को देखकर आपके नक्तों को भय नहीं होता ॥

भावार्थ—हे प्रभो आहो कैसा ही भयंकर ऐरावत के तुल्य महामस्त मदीनमत्त गजेन्द्र तरे भक्तों के सन्मुख मारने के लिये आवे परन्तु तरे नाम का आश्रय होने से तरे भक्त बह नहीं डरते ॥

॥ छप्पे छन्द ॥

मद अवलिप्त कपोल, मूल अलिकुल झंकारै ।

तिन सुन शब्द प्रचण्ड, क्रोध उद्धत अतिधारे ॥

कालवर्ण विकराल, कालवत सनमुख धावे ।

ऐरावत सम प्रबल, सकलजन भय उपजावै ।

देख गजेन्द्र न भय करै, तुमपद महिमा लीन ।

विपत्ति रहित संपत्ति सहित, वरतै भक्त अदीन ॥

३८—मद = हाथीका मद । अवलिप्त = लिपा हुआ । कपोल = गाले । अलि
भौरों । उद्धत = मस्त (मस्त)

भिन्नेभकुम्भगलदुज्ज्वलशोणिताक्त,

मुक्ताफलप्रकरभूषितभूमिभागः ।

वद्धक्रमःक्रमगतंहरिणाधिपोऽपि,

नाक्रामतिक्रमयुगाचलसंश्रितं ते ॥ ३६ ॥

भिन्न = फूटे । इभ = हाथी । कुम्भ = कपोल । गलत् = यह रहा । उज्वल = सुन्दर । शोणित = लहू (खून) । अक्त = मिला हुआ । मुक्ताफल = मोती । प्रकर = समूह । भूषित = शोभित । भूमि = पृथ्वी । भाग = हिस्सा । वद्ध = बांधा । क्रम = तरोका । क्रमगत = क्रमप्राप्त । हरिणाधिप = शेर । अपि = भी । न = नहीं । आक्रामति = दबा लेता है । क्रमयुग = चरणयुगल । अचल = पहाड़ । संश्रित = सहारा लिये । ते = तेरा ॥

अन्वयार्थ—फाड़दिये जो हाथियों के कुम्भ उनसे गिर रहे उज्जले लहू से सींगे हुए मोतियों के समूह कर शोभित कर दिया है जमीन का हिस्सा जिसने और बांधा है क्रम जिसने ऐसा भी शेर अपने पावमें पड़े हुए परन्तु आपके दो चरण रूप पर्वत के आसरे होनेवाले को नहीं दबा सकता ॥

भावार्थ—हे भगवन् महाभयंकर हाथियोंके मस्तक के छेदने वाला जिसे देखते ही इन्सान कांप उठे यदि ऐसे शेरके पैरमें भी कोई आपका भक्त फंस जावे तो शर उसे कुछ भी बाधा नहीं कर सकता । जैसे गुफा में अंजना सुन्दरी की सहायता हुई थी ॥

नोट—इस काव्य के भाषा छन्द कवि हेमराज जी कृत में कालदोष से एक ऐसा शब्द प्रचलित होगया था जो 'मरुद' के पुत्रोदा' अंग का नाम है जो स्त्रियों के सम्मुख कहते हुए लज्जा आती है सो हमने ठीक कर दिया है ॥

अतिमदमत्त गयन्द, कुम्भथल नखन विदारै ।

मोतीरक्त समेत, डार भूतल सिंगारै ॥

बांकी दाढ़ विशाल, बदन में रसना हालै ।

भीम भयङ्कर रूप देख जन थरहर चालै ।

ऐसे मृगपति पग तले जो नर आया होय ।

शरण गहै तुम चरणकी, बाधा करै न सोय ॥ ३९ ॥

कल्पान्तकालपवनोद्धतवह्निकल्पं,
 दावानलं ज्वलितमुज्ज्वलमुत्स्फुलिंगम् ।
 विश्वं जिघत्सुमिव संमुखमापतन्तं,
 त्वन्नाम कीर्तनजलं शमयत्यशेषम् ॥ ४० ॥

कल्पान्तकाल = प्रलयकाल । पवन = हवा । उद्धत = भड़कती । वह्नि = आग ।
 कल्प = सरोवर । दावानल = बनकी आग । ज्वलित = धलती । उज्ज्वल = घमक ।
 उत्स्फुलिंग = जिस से खिगयाड़े निकल रहे हैं । विश्व = जगत् । जिघत्सु = खाने की
 स्वाहिस वाला । इव = जैसे । संमुख = सामने । आपतन् आते हुए । त्वन्नाम = तेरे नाम
 कीर्तन = कथन करणा । जल = पानी । शमयति = शान्त करता है । अशेष = सकल ॥

अन्वयार्थ—हे भगवन् ! प्रलयकाल की पवन कर उड़ाये वा भड़काये आग
 के समान बल रहे चमकीले ऊंचे बिनगारों से शोभित संसार के खाने की इच्छा से
 मानो साम्हने आ रही बनकी तमाम आग को आपका नामोच्चारण रूपजल शांत
 कर देता है ॥

भावार्थ—यद्यपि अग्नि जल से शांत होय है तो भी प्रलयकाल की पवन
 कर उभारी हुई आसमान तक जिस के भस्मकारे जा रहे हैं चारों तरफ से बलती आ
 रही ऐसी भयानक अग्नि भी भगवान के नाम रूपी जल से शांत हो जाती है ॥

नोट—जैसे सीता सतीकर उच्चारण किये प्रभु के नाम रूपी जलने अग्निकुण्ड
 को शांतकर कमलों सहित प्रफुलित पानी का सरोवर बना दिया था ॥

प्रलय पवन कर उठी, अग्न जो तास पटंतर ।
 वमेंफुलिङ्ग शिखा, उतङ्ग पर जलै निरन्तर ।
 जगत् समस्त निगल कर, भस्म करेगी मानों ।
 तद्गतद्वाट दवजलै, जोर वहू दिशा उठानो ।
 सो इक छिन मैं उपशमै, नाम नीर तुमलेत ।
 होय सरोवर परणमै, विकसित कमल समेत ॥ ४० ॥

रक्तीक्षणं समदकोकिलकंठनीलं,
क्रोधीद्वर्तं फणिनमृत्फणमापतंतम् ।
आक्रामति क्रमयुगेन निरस्तशंक,
स्त्वन्नामनागदमनी हृदि यस्य पुंसः ॥४१॥

रक = लाल । ईक्षण = आंखें । समद = मस्त । कोकिल = कोयल । कंठ = गला
नील = नीला । क्रोधीद्वर्त = गुस्से से उन्मत्त । फणी = सांप । उरफण ऊंची, फण किये
आपतंतं = मार रहे । आक्रामति = दबा लेता है । क्रम = पांड । युग = जोड़ा । निरस्त =
बगैर । शंका = शक । त्वत् = तेरा । नाम = नाम । नागदमनी = नागदौन बूटी । हृदि
दिलमें । यस्य = जिस के । पुंसः = नर के ॥

अन्वयार्थ—हे स्वामिन् । सुरख आंखें घाले मस्त कोयल के गले के समान नीले गुस्से
से उद्वत ऊंची करी है फण जिसने ऐसे आते हुये सांप को "वह पुरुष" निर्भय होकर
दोनों पावों से दबा सकता है जिस मनुष्य के दिल में आपके नामरूप नागदौन बूटी है ॥

भाषार्थ—नाग दमनी एक जड़ी होती है जिस को लगाने से कैसा भी जहरीला सांपने
काटाहो बाधा नहीं कर सकता अर्थात् जहर उतर जाता है सो यहां आचार्य कहते हैं
कि हे प्रभो आपके नाममें इतना असर है कि जो पुरुष आपके भक्त हैं आप पर निश्चय
रखते हैं यदि महाकाला सुरख आंखों वाला गुस्से से भरा हुआ सांप ऊंचीफण उठाएजोर
से फुड़ारे मारता हुआ मुखसे अग्नि के चिक्काड़े निकलतेहुए किसी आपके भक्त के सन्मुख
आवे तो वह उसे देख कर नहीं डरता दोनों पैरों से दबा सकता है यदि वह काट भी
खावे तो आपके नाम स्मरण रूपी नागदमन से आपके भक्तों को जहर नहीं घटता ॥

नोट—विषाणुहार में सेठ के पुत्र का जहर उतर गया था ॥

कोकिल कण्ठ समान, श्यामतन क्रोधजलंता ।

रक्तनयन फुड्कार मार विष कणि उगलन्ता ।

फण को ऊंचा करे वेगही सन्मुख धाया ।

तव जन होय निशंक, देख फणपतिको आया ।

जो डंके निजपावको, व्यापै विष न लगार ।

नागदमन तुम नामकी, है जिनको आधार ॥४१॥

वल्गत्तुरंगगजगर्जितभीमनाद,
 भाजौ बलं बलवतामपि भूपती नाम् ।
 उद्यहिवाकरमयूखशिखा पविद्धं,
 त्वत्कीर्तनात्तम इवाशुभिदामुपैति ॥ ४२ ॥

वल्गत् = नाचते । तुरंग = घोड़ा । गज = हाथी । गर्जित = गाजता । भीम = भयंकर । नाद = शब्द । भाजि = युद्ध । बल = फौज । बलवान् = जोरावर । अपि = भी । भूपति = राजा । उद्यत् = ऊंगरहा । दिवाकर = सूर्य । मयूख = किरणें । शिखा = ज्वाला । अपविद्ध = फूंकगया । स्वत् = तेरा । कीर्तन = कथन । तम = अन्धेरा । इव = जैसे । आशु = जल्दी । भिद = भेद । उपैति = प्राप्त होय है ॥

अन्वयार्थ—हे प्रभो बल रहे नाचते घोड़ों से और हाथियों के गर्जन से भयंकर शब्द वाली बलवान् राजों की फौज युद्धमें आपके नामोच्चारण से ऊंगरते हुए सूर्य की किरणों की शिखाओं से वींधे हुए अन्धेरे को समान जल्दी मूट हो जाती है ॥

मावार्थ—यहां आचार्य कहे हैं कि हे भगवन् यदि कोई गनीम बहुत्र बड़ी फौज का भ्रमबोह लिये हुए घोड़े दौड़ाता हुआ हाथियों को गरजाता हुआ इस कदर गरद गुवार उड़ाते हुए कि सूर्य भी नजर न पड़े जिसको देखकर बड़े बड़े मानी राजाओं के मान गलजावे यदि आपके मक्त के सन्मुख आवे तो जैसे सूर्य के सन्मुख अन्धेरा नहीं ठहरता इसी प्रकार आपके आश्रित के मुकाबले से वह साग जाता है ।

जिस रण मांहि भयानक, शब्द कर रहे तुरंगम,
 घन से गज गरजाहि, मत्तमानो गिर जंगम ।

अति कोलाहल मांहि, बात जहां नाहि सुनीजै,
 राजन को परचण्ड, देखबल धीरज छीजे ।

नाथ तुम्हारे नाम से, सो छिनमांहि पलाय,
 ज्युं दिनकर परकाशते, अन्धकार मिटजाय ॥ ४२ ॥

कुन्ताग्रभिन्नगजशोणितवारिवाह,

वेगावतारतरणातुरयोधभीम ।

युद्धे जयं विजितदुर्जयजयपक्षा,

स्त्वत्पादपंकजवनाश्रयिणी लभन्ते । ४३ ।

कुन्त = भाला (बरछी) । अग्र = अग्रभाग । भिन्न = फटा । गज = हाथी । शोणित = खून । वारि = पानी । वाह = प्रवाह । वेग = जल्दी । अवतार = उतरना । तरणि = तैरना । आतुर = दुखी । योध = योधा । भीम = भयंकर । युद्ध = लड़ाई । जय = जीत । विजित = जीते गए । दुर्जय = दुखसे जीतने योग्य । जेय = जीतने योग्य पक्ष = तरफ । त्वत् = तेरे । पाद् = चरण । पंकजवन = कमल समूह । आश्रयी = आसरा लेने वाला । लभन्ते = लभते हैं ॥

अन्वयार्थ—हैं प्रभो आपके चरण कमल रूप वनका आश्रय लेने वाले (भक्त) बरछी के अग्रभाग से मेरे (छेदे) गए जो हाथी उनके खून रूप पानी के प्रवाह में जल्दी से उतरने तथा पारजाने में दुःखी हो रहे हैं योधा जिस में इस लिये भयंकर युद्ध में जीत लिये हैं दुःखसे जीतने योग्य शत्रुपक्ष जिन्होंने ऐसे हुए हुए जय की प्राप्ति होते हैं ॥

भावार्थ—हे भगवन ऐसे बड़े जंगोजदल में कि जहां फौज का घमसान हो जाने से खून की नदियां बहने लग जावे जिसमें बड़े २ योधा फसे हुए दुखी होकर पार जाने में असमर्थ हों ऐसे जंग में मुबतला भी आपके भक्त आपके नाम के स्मरण मात्र से ऐसे अजीत जंग को भी जीतकर फतह पाते हैं ॥

मारै जहां गजेन्द्र कुम्भ हथियार विदारै ।

उमगे रुधिर प्रवाह, वेग जल से विस्तारै ।

होय तिरण असमर्थ, महा योधा बल पूरै ।

तिस रण में जिन तोय, भक्त जे हैं नर सूरै ।

दुर्जय अरिकुल जीतकर, जय पावै निकलक ।

तुम पद पंकज मन बसै, ते नर सदा निहंक ॥ ४४ ॥

अम्बोनिधौ क्षुभितभोषणानक्र चक्र,
पाठीनपीठभयदोलवणवाडवाग्नौ ।
रंगत्तरंगशिखरस्थितयानपात्रा,
स्त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद्ब्रजन्ति ४४

अम्बोनिधौ = समुद्र । क्षुभित = क्षोभवाले । भोषण = भय देने वाले । नक्र = नाकू । चक्र = समूह । पाठीन = एक किसम की मछली । पीठ = पीड़ा । भयद = डराने वाली । उल्लवण = प्रचण्ड । बडवाग्नि = समुद्र की भाग । रंगत् = नाचती । तरंग = लहरें । शिखर = चोटी । स्थित = ठहरे हुए । पानपात्र = जहाज । त्रास = भय । विहाय = छोड़ । भवतः = तुम्हारे । स्मरण = याद करणा । ब्रजन्ति = जाते हैं ॥

अन्वयार्थ—हे भगवन् क्षोभ को प्राप्त हो रहे हैं भयानक नाकूओं के समूह और मछ जल जीव और भय देने वाली है बडवा भाग जहाँ ऐसे समुद्र में नाचती हुई लहरों के ऊपर स्थित है जहाज जिनके ऐसे भी आपके स्मरण से (याद करने से) भय को छोड़ कर चलते हैं ॥

भावार्थ—हे भगवन् अति गंभीर समुद्र जिस में नाकूओं और बड़े २ हेलमच्छ और बड़े २ साँपों के समूह भरे हुए हैं जिसकी लहरें मीलों तक उपर उछल रही हैं और जहाँ जल के जलाने वाली बडवा अग्नि चल रही हो जिस को जहाज और अग्नि बोट भी नहीं भ्रूर कर सकते जैसे कि सौधपोल (दक्षिणी कुतब) ऐसे अलंभ्य समुद्र में यदि आपके भक्त गिर जावें तो आपके नामरूपी तारण के आभय से उस को तैर कर पार हो जाते हैं ॥

नोट—श्री पालमट आदि अनेकापार हुए हैं ॥

नक्र चक्र मगरादि, मच्छकर भय उपजावे ।

जामें बडवा अग्नि, दाहसे नीर जलावे ।

पार न पावें जास, थाह नहीं लहिये जाकी ।

गर्जे जो गम्भीर, लहर गिनती नहीं ताकी ।

सुख सो तिरे समुद्र को, जे तुम गुण सुमराहिं ।

चपल तरङ्गन के शिखर, पार जान ले जाहिं ॥ ४४ ॥

उदभूतभीषणजलोदरभारभुग्नाः,

शोच्यां दशामुपगतागतजीविताशाः ।

त्वत्पादपंकजरजोऽमृतदिग्धदेहा,

मर्त्या भवन्ति मकरध्वजतुल्यरूपाः ॥ ४५ ॥

उदभूत = हो गया । भीषण = भयंकर । जलोदर = पेटका रोग । भार = भार ।
भुग्न = कुबड़े । शोच्या = शोक के योग्य । दशा = हालत । उपगता = प्राप्त हुये ।
गत = दूर हो गई । जीवित = जीना । आशा = आस । त्वत्पाद = तेरे पांव । पंकज =
कमल । रजो = धूल । अमृत = अमृत । दिग्ध = लिपा । देह = शरीर । मर्त्या = मनुष्य
भवन्ति = होय है मकरध्वज = कामदेव । तुल्य = समान । रूप = शकल ॥

अन्वयार्थ—हे प्रभो ! बद्ध गय भयंकर जलोदर रोग के भार से टेढ़े होगये
और दूर होगई है जीवने की आशा जिनकी इसी लिये शोक की दशा (हालत) को
प्राप्त हो गय ऐसे भी मनुष्य आपके चरण कमल की धूल रूप अमृत से लिप गय हैं
शरीर जिनके सो तो कामदेव के तुल्य रूप वाले होजाते हैं ।

भाषार्थ = हे भगवान् आपके चरणों की रज में इतना असर है कि छोटे मोटे
रोग का तो क्या जिकर जलोदर सारखे ला इलाज मरज जिनको होजाने से उनकी
जिन्दगी की आशा नहीं रहती आपके चरणों की रज रूपी अमृत शरीर के लगाने
से उनके सर्व रोग दूर हो कामदेव समान कंचन चरण शरीर होजाता है ।

नोट—भगवान् के प्रतिविम्ब के प्रक्षालन मात्र जल लगाने से कोटीभट
प्रापाल का कुष्ठ दूर हो सुवर्णसा शरीर हुआ है ।

महा जलोदर रोग, भार पीड़ित जे नर हैं ।

वात पित्त कफ कुष्ठ, आदि जे रोग गहे हैं ।

सोचित रहै उदास, नाहिं जीवन की आशा ।

अति घिनावन देह, धरें दुर्गन्ध निवासा ।

तुमपद पंकज धूलको जेलावें निज अङ्ग ।

ते नौरोग शरीर लहिं, छिन में होय अनंग ॥ ४५ ॥

आपादकंठमुरुशृंखलवेष्टितांगाः,

गाढं वृहन्निगडकीटिनिघृष्टजंघाः ।

त्वन्नाममंत्रमनिशंमनुजाः स्मरन्तः,

सद्यः स्वयंविगत बंधभया भवन्ति ॥४६॥

आपाद कंठ = पाँव से कंठ तक । मुरु = वड़ा । शृंखल = सांकल । वेष्टित = लपेटा गया । अंग = शरीर । गाढं = मजबूत । वृहत् = बड़े र । निगड = जंजीर (सांकल) । कीटि = अग्रभाग । निघृष्ट = अलग है । जंघा = टाँग । त्वन्नाममंत्र = तुम्हारा नाम रूपी मंत्र । अनिश = दिनरात मनुज = मनुष्य । स्मरन्तः = याद करते हुए सद्यः = शीघ्र । स्वयं = अपने आप । विगत = दूर होगया । बंध = बंधन । भय = डर । भवन्ति = होजाते हैं ॥

अन्वयार्थ—पाँव से गले तक बड़े भारी सांकल से लपेटे हैं शरीर जिनके गाढी बेड़ी की कीटो से घिस गई है जंघा जिनकी ऐसे मनुष्य तुम्हारे नामरूप मंत्र को दिनरात जपते हुए जड़वी हो अपने आप टूट गए हैं बंधन जिन के ऐसे हो जाते हैं ॥

भावार्थ—हे प्रभो आपके नाम मात्र में इतना प्रभाव है कि जब राजा आदि संकलों से जकड़ कर मोरों में डाल ताले ठोक देते हैं तब ऐसी कठिन मीढ़ पड़ने पर आपके भक्त आपका नामरूपी मंत्र का स्मरण करते हैं तो अपने आप इतना बंधन दूर सर्व भय दूर हो जाते हैं ॥

पाँव कण्ठ से जकर, बान्ध सांकल अति भारी ।

गाढी बेड़ी परे माहि, जिनजांघ विदारी ।

भख प्यास चिन्ता शरीर, दुःख जे विललाने ।

शरण नाहि जिन कोय, भूप के बन्दीखाने ।

तुम सुसरत स्वयमेव ही, बन्धन सब खुल जाहिं ।

छिनमें ते संपति लहें, चिन्ताभय विनसाहिं ॥ ४६ ॥

मत्तद्विप्रेन्द्रमृगराजदवानलाहि,
संग्रामवारिधिसहोदरबंधनीत्यम् ।
तस्याशुनाशमुपयातिभयं भियेव,
यस्तावकं स्तवमिममंति मानधीते ॥४७॥

मस्त = मस्त । द्विपेन्द्र (गजराज) = बड़े-हाथी । = मृगराज = शेर । दवानल =
घनकी आग । अहि = साँप । संग्राम = युद्ध (लड़ाई) । वारिधि = समुद्र । महोदर =
जलोदर के समान प्रेट का रोग । बंधन = बाँधा जाना । उर्थ = उठा । तस्य = उसका ।
आशु = जल्दी । नाश = नष्ट । उपयाति = हो जाता है । भयं = डर । भियां = डर
से । इव = तरह । यः = जो । तावकं = तुम्हारा । स्तव = स्तोत्र । इमं = इसे मतिमान् =
बुद्धमानमधीते = पढ़ता है ॥

अन्वयार्थ—जो बुद्धिमान् आपके इस स्तोत्र को पढ़ता है उस का मस्त हाथी,
शेर, घनकी आग, साँप, युद्ध, समुद्र, जलोदर, रोग, बंधन, इनसे पैदा होने वाला भय
शीघ्र ही उससे डरता हुआ नष्ट हो जाता है ॥

भावार्थ—यहाँ आचार्य कहते हैं कि हे भगवन् ऊपरके छन्दों में वर्णन करे जो
मस्त हाथी, शेर, घन की आग साँप युद्ध समुद्र जलोदर रोग बंधन आदि अष्ट
प्रकार के महा संकट जो बुद्धिमान् आप के मक्त विपदा के समय आपका यह स्तोत्र
पढ़ें उन की हर प्रकार की मुसीबतें डर कर एक क्षण मात्र में नष्ट हो जाती हैं
अर्थात् उनकी कौसी ही विपदा पेश क्यों न आजावे यदि वह मुसीबत के घकते आपके
इस स्तोत्र का पाठ करें तो उनकी सर्व तकलीफात फौरन दूर हो वह भयंन खैर
हासिल करते हैं ॥

महामत्त गजराज, और मृगराज दवानल ।

फ्रंणपति रण परचड नीरनिधि रोगमहाबल ।

बन्धन ये भय आठ, डरप कर मानोनाश ।

तुमसुमरत छिन माहि, अभय थानक परकाश ।

इस अपार खसारमें शरण नाहि प्रभु कोय ।

याते तुम पद भक्त को भक्ति सहाई होय ॥ ४७ ॥

स्तोत्रस्रजं तव जिनेन्द्रगुणैर्नि बद्धां,
 भक्त्या मया विविधवर्णविचित्रपुष्पाम् ।
 धत्ते जनो य इहकंठगतामजस्रं,
 तं मानतुंगमवशा समुपैति लक्ष्मीः ॥४८॥

स्तोत्रस्रजं = स्तोत्र रूप माला को । तव = तुम्हारी । जिनेन्द्र = जिनेश । गुण = माधुर्यादि काव्य गुण, वा, सूत । निबद्ध = गून्धी (स्त्री) । भक्त्या = भक्ति से । मया = मैंने । विविध = अनेक प्रकार की । वर्ण = रंग । विचित्र = कई रंग की । पुष्पा = फूल । धत्ते = पहिनता है । जनः = मनुष्य । यः = जो । इह = यहां । कंठ = गला । गता = पड़ी हुई । अजस्र = निरंतर (लगातार) । तं = उसे । मान = इज्जत । तुंग = ऊंचा । वा "मानतुंग" कवि का नाम है । अवशा = न बश होने वाली । समुपैति = मच्छी तरह प्राप्त होय है । लक्ष्मी = धी, शोभा, मुक्ति ॥

अन्वयार्थ—हे जिनेश ! भक्ति करके तुम्हारे गुणों से गून्धी हुई अनेक भस्त्र रूप विचित्र हैं फूल जिसमें कंठ में प्राप्त इस स्तोत्र रूप माला को जो पहिन लेता है मान से ऊंचे उस मनुष्य को भी लक्ष्मी (मुक्ति) प्राप्त होती है ॥

भावार्थ—इस स्तोत्रके पढ़नेका महात्म्य यह है कि इस में वर्णन करे जो जिनेन्द्र के गुण वही भया तागा और इस के शब्द वही नवे रंग विरंग के फूलों की माला जो नर कंठ में पहने अर्थात् इस को कंठ कर नित्य पढ़ें वह इज्जत, लक्ष्मी माला दरजे के स्तवे खिलत और स्त्री पुत्रादिक हर क्लेश के मनोवांछि कायम रहने वाले फलपाय मुक्ति के भागी होंगे ॥

यह गुण माल विशाल नाथ तुम गुणन समारी ।

विविध वर्ण के पुष्प, गून्ध मैं भक्ति विधारी ॥

जोनर पहिरे कंठ भावना मनमें भावे ।

मानतुङ्ग वह निज अधीन शिवलक्ष्मी पावे ॥ ४८

दोहा—भाषा भक्तामर कियो, हेमराजहितहेत ।

जे नर पढ़ें स्वभाव सों ते पावें शिव खेत ॥

सूची पत्र ।

यह पुस्तक हमारे यहां बिकती है ।

हमारी छगवाई हुई पुस्तकों के नाम ।

शुद्ध पंचलक्षणक तिथियों के चार चौबीसी पूजन पाठ संग्रह का महान ग्रंथ अर्थात् (संस्कृत चौबीसी पूजा पाठ २ भाषा चौबीसी पूजा पाठ रामचन्द्रकृत ३ भाषा चौबीसी पूजापाठ वृन्दावनकृत ४ भाषा चौबीसी पूजा पाठ बखतावर कृत यह चारों पाठ एक ग्रन्थाकार खूले पत्रों में शुद्ध पंच कल्याणक तिथियों के छपे हैं ५) इ०इसमें कमीशन नहीं काटा जाता क्योंकि इसका पूरा दाम १०) है ।	दर्शन कथा भाषा छंद बन्द १)
हरवंश पुराण महान ग्रन्थ ५) इसमें कमीशन नहीं काटा जाता क्योंकि इसका पूरा दाम ... ६) है ।	चार दान कथा बड़ी ... १)
श्रीपाल चरित्र भाषा छन्द बन्द १॥)	शील कथा भाषा छंद बन्द ... १)
नई जैनतीर्थ यात्रा बड़ी ... १)	दो निशि भोजन कथा बड़ी छोटी १)॥
सुकुमाल चरित्र बड़ा भाषा ... १)	नित्य नियम पूजा देवशास्त्र गुरु शुद्ध संस्कृत पूजा तथा भाषा पूजा १)॥
जैन कथा संग्रह (स्त्रियों के संतान पैदा होने की विधि और इलाज सहित १)	६०५ दिगम्बर भाषा जैन ग्रन्थों के नाम ... १)
जैनबाल गुटका प्रथम भाग बड़ा जैन पाठशालाओं में पढ़ाने योग्य १)	कुवेरदत्त, के १८ नाते ... १)
	वारह भावना संग्रह ... १)॥
	छह ढला संग्रह धानत, वृधजन, दौलत तीनों पाठों की इकट्ठी एक पुस्तक १)
	श्री नेमनाथ का व्याहला प्रश्नीचर वारह मासादि राजल नौ पाठ १)
	यमनसैनचरित्र म नियमनसैन का वृत्तान्त मुनिवर के अहार की विधि ... १)
	तथा जिल्द सहित ... १)॥
	तत्त्वार्थ सूत्र मूल संपूर्ण ... १)
	मूधर जैन शतक अर्थ सहित ... १)
	भक्तामर भाषा कठिन अर्थ सहित १)

मिलने का पता— **हकीम ज्ञानचन्द्र जैनी**

मालिक दिगम्बर जैनधर्म पुस्तकालय लाहौर ।

हमारी जड़ी बूटियों के इलाज में स्त्री को जरूर गर्म रह जाता है

यह इलाज हम जंगल की जड़ी बूटियों से करते हैं हमारे इलाज से जरूर ग रह जाता है जिसे इलाज करना हो हमसे हमारा इतिहास मंगा कर पढ़े ॥

स्त्रियों के पगर (सुफेद वीर्य गिरने) का इलाज ।

जिस स्त्री के बीस वर्ष से भी सुफेद वीर्य गिरता हो हमारी जड़ी बूटियों इलाज से बिलकुल बंद हो जाता है जिसके कपड़े बंद हो गये हों हमारी जड़ी बूटियों के इलाज से कपड़े जारी हो कर हरमास बराबर होने लगते हैं ॥

पुरुषों के वीर्य की विमारियों का इलाज ।

जिस पुरुष का वीर्य पानी समान भी पतला हो गया हो आतनाफ के जखम हो पुराना सुजाक हो खून गंदा हो गया हो ना मरद होगया हो हमारे इलाज से बिलकुल नीरोग हो कर काया स्वर्ण समान हो जाती है ॥

पुराने जखमों का इलाज ।

जिन विमारों को डाक्टर यह कहे कि इसकी दांग या बांह बंदूक काटे इसके जखम अच्छे नहीं हो सकते हमारी जड़ी बूटियों के मल्लहम से वपों के सबे जखम दूर करके काया नीरोग हो जाती है ॥

फालिज का कामिल इलाज ।

जिसे फालिज मार गया हो अथडंग मार गई हो दांग बांह थड मुडने गया हो हमारी बूटियों के इलाज से मनुष्य बिलकुल तंदुरुस्त हो जाता है ॥

हम दवा नहीं बेचते ।

हम दवा नहीं बेचते और न दवा भेज सकते हैं जिसे इलाज कराना हो हमें बुन कर इलाज करवावे हम हकीम हैं वाय पिच कफ बीमार के मिजाज माफिक संरक्षणी शरमी शतुरमास मौसम के अनुसार सोच समझ कर इलाज करते हैं ॥

हमारी फीस बहुत जड़ी है ।

हम मामूली फीसपर इलाज करने नहीं जाते हमारे फीस हाथी जैसा पेट इ बढ़ी है कि बड़े धनवान हो देखते हैं जो हमको बुला कर इलाज करवावे हमारा मल्लहम सहित भानेजानेका किराया खरब दवा का दाम रोजाना रसोई खरचनी देना पड़ता है

 **हमारा पता:— हकीम ज्ञानचंद्रजैनी ।**

महला अनारकली नीला गुम्मज लाहौर

